शतक

~ नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

श्रीपूज्य नारायणमुनिचतुर्वेद से बड़े बड़े वेद
पारायण ब्रह्म यज्ञों में जनता आग्रह करती है
कि वे जो प्रार्थना करते समय मन्त्रों के रहस्य
प्रस्तुत करते हैं छपवाये जाने चाहियें।
अपनी समस्त रचनायें मुद्रित कराने के
लिये हमारा भी उनसे यही आग्रह
है। पं० लेखराम जी आर्य
मुसाफिर का भी यही
आदेश था कि आर्यों
का लिखित प्रचार
कभी भी अवरुद्ध
न होना
चाहिये।

आपका पुत्र
डॉ०आनन्द वर्धन चतुर्वेदी
B. A., B. A. M. S.
आयुर्वेद भास्कर
गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

आपका अन्तेवासी
राम प्रकाश सरस
सिद्धान्त शास्त्री
गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर

ओ३म् मृत्योर्मा अमृतं गमय

स्वामी नारायण मुनि प्रकाशन माला का

द्वितीय विचार बिन्दु

मुक्तक-शतक

रचयिता :

श्रीनारायणमुनिश्चतुर्वेदः

पूर्व परिचय :—

लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी, एम. ए.

साहित्याचार्य, विद्याभास्कर, आयुर्वेद भास्कर,

भूतपूर्व आचार्य गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

जिला सहारनपुर, उ. प्र.

मर्मस्पर्शिनी टीकाकार :—

माधव प्रसाद शास्त्री उपाध्याय एम. ए., विद्याभास्कर

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

जि० सहारनपुर, उ० प्र०

पिन–249405

प्रकाशक—

केशव प्रसाद शास्त्री उपाध्याय

एम०ए०, विद्याभास्कर

नन्दकिशोर (विनीत)

एम०ए०, विद्याभास्कर

स्थान—

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

पो० गुरुकुल महाविद्यालय

पिन–249405

जि० सहारनपुर (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण–जनवरी, १६८२

मूल्य ३-५०

मुद्रकः

शक्ति प्रेस

(नहर पुल) कनखल (फोन नं० ७७)
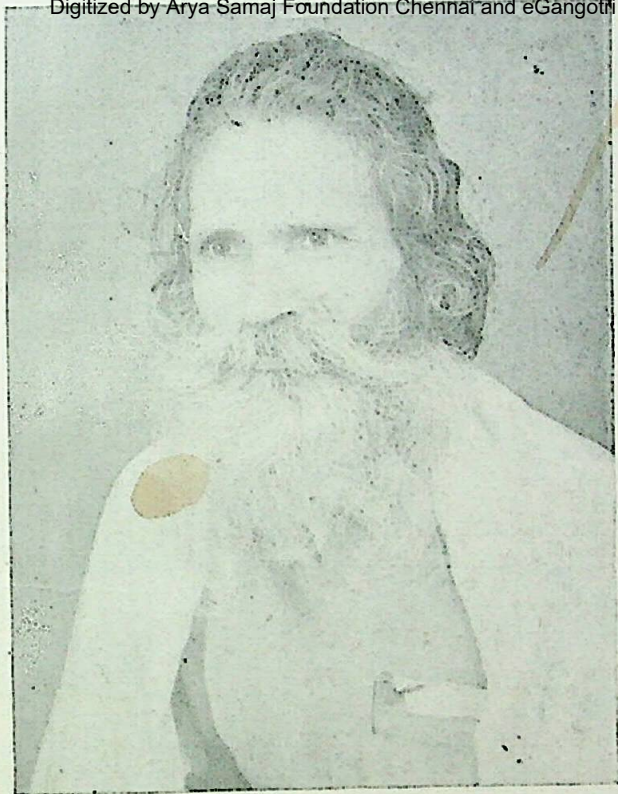
लेखक—नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

टीकाकार—
माधव प्रसाद शास्त्री 'नैपाली'

प्रकाशक—
नन्दकिशोर 'विनीत'
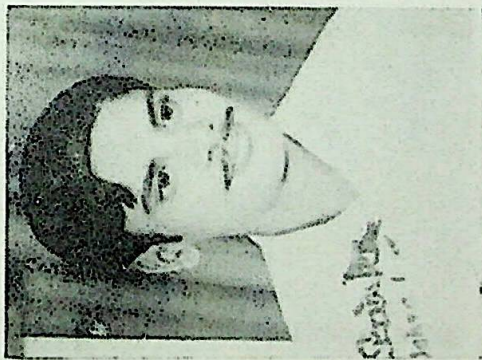
मुक्तक-शतक

समर्पण

ईश स्मृति के शुचि चरणों में।
मुक्तक – शतक समर्पित ।।
करके हृदय कहाँ रह गया।
सहृदय दल में दर्पित ।।

—नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

श्रीमन्नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

का

संक्षिप्त परिचय

दर्शन शब्द ज्ञान युन काव्य कला धृत वेद ।
ज्योतिष द्योतित योग्यता पूरित आयुर्वेद ॥ १ ॥

नारायण मुनि ब्रह्म के ध्यान धौत आदर्श ।
करते पालन सर्वदा सर्व जनाश्रित हर्ष ॥ २ ॥

यद्यपि पैतृक रोग से जर्जर काय अकाल ।
पुनरपि सप्तति दो मिला वर्षों लिये निकाल ॥ ३ ॥

गुरुकुल ज्वालापुर पढ़े यहीं प्रधानाचार्य ।
बने मार्ग पर वेद के सुन्दर सेवक आर्य ॥ ४ ॥

[illegible]न भाषण काव्य की रचनामृत के सिन्धु ।
यज्ञाश्रित विज्ञान के जागृत जीवनवन्धु ॥ ५ ॥

सद्विचार सद्गुण निरत सर्वभूत हित सिद्ध।
शास्त्रीय-पाटव-महित विद्धच्चक्र समिद्ध ॥ ६ ॥

कभी पितामह आपके दयानन्द ऋषि पृष्ट।
चतुर्वेद समुपाधि से हुए विभूषित हृष्ट ॥ ७ ॥

तद्रक्षणव्रत ले सदा श्रद्धाबद्ध उपाधि।
धारण करते धारणाधृतिरत यथा समाधि ॥ ८ ॥

आपका अन्तेवासी

टीकाकार

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य की विविधा के विशाल भण्डार में समय-समय में कुछ इस प्रकार अनमोल रत्न डाले गये हैं, जो वस्तुतः काव्य शास्त्रीय दृष्टि से उच्चकोटि के होने के साथ ही मानव समाज और जीवन दर्शन में आदर्श और पथ प्रदर्शक होने से समस्त समाज के लिये स्पृहणीय, संरक्षणीय, पठनीय, मननीय और व्यवहरणीय भी हैं।

मैंने पाया है कि इस युग के प्रकाण्ड विद्वान् प्रभु के महान् उपासक, समाज के वास्तविक द्रष्टा, स्रष्टा और व्यावहारिक उपदेष्टा तथा सुधारक, प्रवाहमयी सरल सालंकृत सुमधुर भाषा के भण्डार और सतत कवित्वशक्ति के अचिन्त्य चालक आदरणीय श्री स्वामी नारायणमुनिश्चतुर्वेदः (पूर्वनाम आचार्य लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी एम० ए० साहि-

त्याचार्य) के अन्तः से अनायास प्रस्फुटित दोहे (प्रस्तुत "मुक्तक शतक") उक्त अनमोल रत्नों के बीच मानों चम-चमाते हुए हीरे ही हैं और यह बड़े हर्ष का विषय है कि हीरे प्रभु की अपार कृपा से विद्वज्जनों के सम्मुख आलोकित होने, सहृदयों को आलोकित करने, सामान्य-जनों के मार्गदर्शनार्थ और सहृदयतारूपी धन से निर्धनों को भी पूर्णतया प्रफुल्लचित्त करने तथा व्यावहारिक उपदेष्टा बनकर नवीन पीढ़ी को भी सन्मार्ग में बलात् आकृष्ट करने की क्षमता के साथ स्त्रोद्देश्य पूर्त्यर्थ लोक में प्रकाशित होने चले हैं।

हिन्दी साहित्य में जो आवश्यकता विशुद्ध पवित्र भावनात्मक समाज सृजन की भावना के शंखनाद की थी, उसकी तो पूर्ति प्रस्तुत "मुक्तक शतक" से होती ही है, साथ ही साथ हिन्दी सूक्तियों के रूप में कण्ठाग्र करने के लिये भी सम्पूर्ण शतक अत्यन्त उपयोगी है।

काम क्रोध लोभ इत्यादि आन्तरिक दोषों और अहिंसा, सत्य, अस्त्येय आदि धारणीय गुणों पर स्वाभाविक और चमत्कारयुक्त उक्तियाँ अन्तः प्रभावकारी होने के साथ-साथ साहित्यिक चिन्तन धारा को भी विकृतियों से सुकृतियों की ओर मोडनेवाली हैं । जहां रचे जाते हुए साहित्यों में प्रकृति के कोमल दृश्यों में भी अश्लीलता आदि की झलक ही नहीं, नग्ननृत्य दृष्टि गोचर होता है, वहीं आपके इस काव्य में दृष्टिगोचर होने वाला प्राकृतिक सम्पदाओं में परमेश्वर का वैभव आस्तिकों और सहृदयों को तो भाव विभोर करता ही है, तद्विरोधियों में भी एक विद्युत्तरंग कौंधा देने वाला है ।

आपका इस शतक का कवित्व वस्तुतः निखार के साथ समाज हितार्थ ही हृदय से प्रवृत्त हुआ है और इसीलिये स्वाभाविक पाण्डित्य के साथ ही भावगाम्भीर्य सहृदयों के हृदयों में

प्रविष्ट होकर बलात् प्रभावकारी है । इस प्रकार काव्यगत भावपक्ष एवं कला पक्ष दोनों ही यहाँ पर स्तुत्य हैं।

यदि प्रस्तुत मुक्तक को विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में स्थान दिया जाय तो यह निःसन्देह छात्रों के सर्वाङ्गीण विाकस में पूर्ण योगदान करेगा और इससे उनके पाठ्यक्रमों की एकाङ्गी प्रवृत्ति से होने वाली कुण्ठायें किसी हद तक दूर होंगी। अतः शिक्षाविदों और पाठ्यक्रम निर्धारण कर्ताओं को चाहिये कि वे इस ओर अति गम्भीरता से विचार करें और प्रस्तुत मुक्तक शतक का उचित सम्मानदानार्थ योगदान करें।

यह शतक प्रबुद्ध जनों के अतिरिक्त सामान्य और अति-सामान्यजनों तथा विशेषेण विद्यार्थियों के भी लाभार्थ लोक में प्रवृत्त हो, इस भावना से इसकी सरल टीका प्रत्येक दोहे के साथ देने का उपक्रम किया गया है:—

आशा है यह मुक्तक समूह मुक्तकों (मोतियों) के ही समान सभी वर्गों को अपनी अपनी स्थिति के अनुसार पूर्णलाभदायक सिद्ध होगा।

दीपमालिका — टीकाकार
७-११-१६८०
शुक्रवार

अभिमत

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में मुक्तकों का संकलन 'शतक' नाम से उपलब्ध है और यह लोकप्रिय काव्य विद्या के रूप में प्रचलित रहा है। इन शतकों के विषय उपदेश, प्रशस्ति, भक्ति, ज्ञान, प्रेम, विरह, वैराग्य, दान, शौर्य, स्थान, सदाचार, निर्वेद और कलात्मक विनोद रहे हैं। राजस्थानी में सत तथा व्रजभाषा में सतक नाम से ऐसी रचनायें लिखी गई हैं। अधिकांश शतकों का मुख्य छन्द दोहा रहा है। कुछ रचनायें अन्य छन्दों में भी लिखी गईं जैसे बरवै शतक। हिन्दी की प्रथम सत रचना मैनासत कही जाती है। सर्वाधिक शतकों की रचना हिन्दी में रामचरण दास करुणासिन्धु ने की है। उपासना शतक, नाम शतक, विवेक शतक, वैराग्य शतक इनकी प्रमुख रचनाएं हैं।

रामचरणदास रसिक सम्प्रदाय के रामभक्त कवि थे। हित वृन्दावनदास का उपालंभ शतक, ध्रुवदास जी का वृन्दावन शतक, मुबारक का तिल शतक तथा अलक शतक योग वैराग्येतर विषयों की ओर भी संकेत देने वाली रचनाएं हैं। तात्पर्य यह है कि शतक संज्ञक रचनाएं हिन्दी की लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत रही हैं तथा विषय की दृष्टि से इनका आयाम व्यापक कहा जा सकता है।

खड़ी बोली में स्वामी नारायणमुनिश्चतुर्वेदः का काव्य संकलन मुक्तक शतक नाम से प्रकाशित हो रहा है, यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। स्वामी जी अलंकृत परम्परा के अभ्यासी कवि हैं। वैदिक तथा संस्कृत साहित्य पर उनका असाधारण अधिकार है। सर्वोपरि बात यह है कि वह सदाचार,तप, संयम, भक्ति और स्वाध्याय की जीती जागती मूर्त्ति हैं। आर्य संस्कारों की प्रखरता उनके चिन्तन में

प्रस्फुटित है। अतः प्रभु महिमा, दिव्य प्रकृति दर्शन, सत्य, अहिंसा, करुणा, अस्त्येय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, ईश्वर प्रणिधान, यम नियमादि योगांग, विवेक, वैराग्यादि विषयों पर मुक्तक लिखकर उन्होंने सनातन मानवधर्म को उजागर किया है। उनका यह काव्य वैदिक तथा वैदिकेतर विचारधारा वाले प्राणिमात्र के जीवन को रूपान्तरित कर देने वाला पारस संयोग सिद्ध होगा। अधोगति की ओर ले जाने वाले विषयों का संकेत करते हुए उन्होंने निषेध मुख से कुछ विधेय बातें की हैं। विधि-निषेध मुख से ध्वन्य मानव धर्म मीमांसा की प्रक्रिया में उनका कवि स्वयंभू की महिमा से ओत प्रोत है तभी तो 'काव्य न मरता है,न जीर्ण होता है' की उक्ति की सार्थकता इन सुभाषितों में भी झलक मार रही है। सभ्यता संस्कृति, संस्कार, स्वदेश प्रेम, हिन्दी, संस्कृत, यज्ञ, सन्त आदि विषयों पर भी स्वामी जी ने खूब लिखा है। रीति-

काल में यमक शतक जैसी रचनाओं ने पण्डित और प्रवीणों के चित्त को चमत्कृत कर देने वाली जिस शास्त्रीय अभि-व्यक्ति का प्रवर्त्तन किया उसका सफल अनुगमन भी कवि ने किया है। मुक्तक-शतक का ६०वाँ दोहा अनेकार्थक रचना शैली का उत्कृष्ट निदर्शन है। श्रेष्ठ मुक्तक तो आचार्य आनन्दवर्धन की दृष्टि में सौ-सौ प्रबन्धों को भी अपने अर्थलोक से; रसदीप्ति से निष्प्रभ कर देता है। स्वामी जी के ये मुखर मुक्तक सहृदय पाठकों को अपनी आत्मकथा स्वयं सुना डालेंगे, एक बार कोई इनके शब्दावरण को उतार कर इनके अनिंद्य सौन्दर्य का हृदय के नेत्रों से साक्षात्कार भर कर ले। मुक्तक-शतक के कुछ मुक्तक मौक्तिक तो भगवती भारती के कंठहार बनेंगे जैसे—

यह अनन्त रमणीय जो श्याम पट्ट सा व्योम।
अर्ध इन्दुगत बिन्दुमय तारक अंकित ओम् ॥

अरी धारनाधार ना वह संभार सँभार।
जहाँ आरती रति करे काम कामनाकार॥

करते हो किसका–मना रहे काम ना पास।
करो कामना ईश की, रहे काम ना पास॥

भारत माँ के भाल की बिन्दी हिन्दी आज।
हन्त मिटाता जा रहा शासक सभ्य समाज॥

नभ तारक-तारक नहीं भव तारक तू देख।
निज तारक पढ़ते रहे मिले ना तारक लेख॥

इस उत्कृष्ट रचना के लिए स्वामी जी बधाई के पात्र हैं।

—विष्णुदत्त राकेश

धन्यवाद

प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति सरिताओं के सुदृढ़ सेतु हिन्दी भाषा की महनीयता रूप ध्वज पट्टिका के सर्वोन्नत पुनीत केतु, विद्वज्जन मर्यादाओं के संरक्षण सक्षम भूत अचिन्त्य हेतु साहित्य वाचस्पति डा० विष्णुदत्त राकेश एम. ए. पी. एच. डीं. लिट्०अध्यक्ष हिन्दी विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार उ० प्र० से कौन परिचित नहीं।

आप त्रिवेणी सङ्गम के समान हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी तीनों भाषाओं के पुण्यतीर्थ है। लेखन और भाषण की अलङ्कृत शैलियों ने आपका उचित ही पाणिग्रहण किया है। अनुसन्धान की सिद्धि ने अपनी समृद्धि बड़ी तपस्या के पश्चात् प्राप्त की है। आपकी आलोचनात्मक विवेचन रुचि मातृवत्सलता का स्वरूप लेकर प्रकट होती है। गहन अध्य-

यन की धौरेयता धीर घिषणावधीरित सुधी वर्ग को भी निसर्गतः चकित कर देने वाली है। नम्रता की मूर्ति, उदारता के महोदधि, आत्मीयता की सतत गति वाले नभस्वान् तथा अपने विपुल प्रभाव के आप भास्वान् हैं।

इस प्रस्तुत पुस्तिका पर आपने पुनीत अभिमत देकर जिस प्रकार इस साधारण से साधु पर साधुतर विचार धारा प्रवाहित कर के अभिषिञ्चन किया है वह आपकी–गुण ग्राहिता का साग्रह अनुग्रह है।

किसी ने ठीक कहा है –अश्मापि याति देव त्वं महद्भिः सम्प्रतिष्ठितः। मेरी ओर से डाक्टर साहब को नहि नहि विद्या सागर को, विद्या भास्कर को, विद्या वाचस्पति को कोटि कोटि धन्यवाद है। सपरिवार उनके लिये शत शत शुभकामनायें समर्पित हैं। प्रभु उन्हें स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करें। धन धान्य से परिपूर्ण हों। चतुर्दिक् कीर्ति के पात्र बनते चले जायें।

साथ ही अपने सुयोग्य शिष्य प्रबुद्ध किन्तु नम्र उदीय-

मान नक्षत्र गुणरत्न श्री माधव प्रसाद शास्त्री एम. ए. को भी धन्यवाद दिये बिना हृदय नहीं मान रहा भले ही वह इसके आकांक्षी नहीं हैं। आपने मर्म स्पर्शिनी नामक हिन्दी टीका करके इस पुस्तिका में और भी चार चाँद लगा दिये हैं। मैं उनके भो जीवन के भविष्य की चतुर्मुखी योग्यता और उज्जवलता की महोज्वल कामना करता हूँ।

स्वामी नारायणमुनि प्रकाशन के प्रथम बिन्दु के प्रकाशन में उनका भगीरथ प्रयत्न रहा है। साँस्कृतिक विचार नाम की पुस्तिका के मुद्रण में मेरी मौन मुद्रा को भङ्ग करने का श्रेय उन्हीं को है। विभिन्न पुस्तिका लेखन की प्रवृत्ति में प्रवृत्त करना अत्यान्य जनों से भी अत्यधिक उन्ही का हाथ है। उन्हें भी इसलिये कोटि कोटि धन्यवाद है।

नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

विजयादशमी सम्वत् २०३७ अश्विन शुक्ला

दिनांक १९-१०-१९८०

ओ३म्

मुक्तक–शतक

१–प्रार्थना

सुधा सुधाकर नाथ मम, रसना रसनाधीत ।
कोई कण तो इधर धर, करो अभय भयभीत ॥

हे सु–अच्छी प्रकार, धा-धारण करने वाले, सुधाकर नाथ ! चन्द्रसम आह्लादक स्वामिन्, मम–मेरी रसना–जिह्वा, रस–कवित्वरस से ना–नहीं अधीत–अध्ययन वाली है । अतः इस रस का कोई तो कण इधर मेरी जिह्वा पर धर–रखकर भयभीत को अभय कर दो । कवि जिह्वा में रस न होने से भयभीत है और प्रभुदेव चन्द्रसम आह्लादक होने से रस से परिपूर्ण हैं । अतः उनसे यह प्रार्थना सामयिक है ।

इस कविता में यमक नामक शब्दालंकार है । माधुर्यानुगत प्रसादगुण है और भक्ति रस है ।

मुक्तक शतक में सभी दोहे स्वयं में पूर्ण हैं अतः मुक्तक काव्य है।

२–प्रभु महिमा

अनाधार धर अधर में, धरा घुमाता कौन ?
प्रति रजनी रजनी प्रभु, खोज रहा है मौन ॥

वह कौन है जो अनाधार–विना ही आधार के अधर में–अन्तरिक्ष में, धरा–पृथ्वी को, घुमाता घुमा रहा है। और प्रति रजनी–प्रत्येक रात्रि में रजनी प्रभु–चन्द्रमा मौन होकर किसे खोज रहा है ?

यहां भी यमक तथा अनुप्रास अलंकार हैं। रजनी प्रभु से समासोक्ति अर्थालंकार प्रतीत हो रहा है। प्रसादगुण है। भक्ति रस है।

३–प्रभु महिमा

यह अनन्त रमणीय जो, श्यामपट्ट सा व्योम।
अर्ध इन्दुगत बिन्दुमय, तारक अंकित ओम् ॥

यह रमणीय–सुन्दर, अनन्त–जिसका वारापार नहीं, श्यामपट्ट जैसा जो व्योम–आकाश दीख रहा है, उस पर अर्ध इन्दुगत–आधे चन्द्रमा का भाग ॐ के अनुस्वार का प्रतीक और गोलाई में आकर बद्ध शिखा की आकृति में तारक समूह साक्षात् ॐ जैसा दीख रहा है।

यहां अनुप्रास शब्दालंकार और उत्प्रेक्षा अर्थालंकार, प्रसाद गुण स्पष्ट है।

४–प्रभु महिमा

तमो मुषा आकर उषा, तारक मुक्ता चूर्ण।
ले चमका दमका रही, द्रुत दिग्मण्डल पूर्ण॥

तमोमुषा-अन्धकार को चुराने वाली भी, उषा–प्रभात ज्योति ने, तारक मुक्ता–तारों के रूप में मोतियों का चूर्ण लेकर द्रुत–शीघ्र ही दिग्मण्डल को–दिशाओं के समूह को पूर्ण रूप से मांजकर इतना चमका दिया है कि वह दमक उठा है।

रूपक निरुपित समासोक्ति अलंकार। शेष पूर्ववत्।

५—प्रभु महिमा

घुमा घुमाकर कलित ये, अखिल गोल भूगोल।
अहो ईश जप निरत है, दिनकर मुदित अदोल ॥

अहो—आश्चर्य ! यह दिनकर—सूर्य, मुदित—प्रसन्न, अदोल—निस्तब्ध एकाग्र होकर अखिल—समस्त, ये गोल-गोल भूगोलों के दानों की माला सी किरण रूप करों से हाथों से घुमा घुमाकर भगवान का जप सा कर रहा है।

श्लेषोत्थापित रुपक निरुपित उत्प्रेक्षालंकार। शेष पूर्ववत्।

यद्यपि सूर्य अपनी कीली पर घूमता है तथापि वह दूर से अदोल—स्तब्ध दीखता है अतः एकाग्र कहना उचित है।

६—प्राकृतिक छटा अन्योक्तिः

उबल उबल नल जल प्रवल, धार-धार धर धीर।
रवि दीधिति संबोध पा, इन्द्र धनुष का तीर ॥

मोटे नल का जल प्रबलता के साथ उबल उबल कर धार-धार–प्रत्येक धारा में धीर धर–एक समान आता हुआ, रवि दीधिति–सूर्य की किरणों का, संबोध-सम्पर्क पाकर जब इन्द्र धनुष जैसा दीखता है, तब उसमें जल बाण जैसा चढा हुआ दीखता है।

उत्प्रेक्षालंकार चमत्कृत होकर प्रयुक्त हुआ है।

७–प्राकृतिक सौन्दर्य प्रभु महिमा

धरा धाम पर पर रही, धूम धूप की मन्द।
जैसे रजनी मुख मुदित, विदित चन्द्रिका चन्द॥

धरा धाम पर–पृथ्वी पर, शिशिरकालीन धूप की धूम अब मन्द पड़ गई है और ऐसी प्रतीत हो रही है मानो वह मुद्रित–प्रसन्न, रजनीमुख–रात्रि के प्रथम प्रहर के विदित–जाने माने गये चन्द्र की चन्द्रिका हो।

इस दोहे में उत्प्रेक्षालंकार और प्रसादगुण है।

८—सुभाषित अन्योक्तिः

दे उज्वलता जगत् को, स्वयमुज्वल रवि धन्य ।
जगा रहे निःस्वार्थ हो, जग जग तुम्हीं अनन्य ॥

जगत् को उज्वलता—प्रकाश देकर, स्वयं-अपने आप उज्वल—प्रकाशसम्पन्न रवि—सूर्य । तुम धन्य हो सर्वोपरि हो । तुम्हीं अनन्य—अद्वितीय—एक ऐसे हो जो निःस्वार्थ—अपना सब कुछ छोड़कर जग जग प्रतिदिन प्रत्येक को जगा रहे हो ।

यहां अन्योक्ति अलंकार के द्वारा यह बताया गया है कि सूर्य के सामान स्वयं प्रकाशित कुछ महापुरुष सर्वदा दूसरों को विद्या का प्रकाश देकर आनन्दित करते रहने हैं ।

९—सुभाषित अन्योक्ति

शशि अर्पित अपनत्व कर, सब प्रतिपल प्रतिपर्व ।
गौरव गरिमा गिरि चढ़े, तुम्हें न किञ्चित गर्व ॥

हे शशिन्—चन्द्र ! प्रत्येक पर्व में प्रतिक्षण अपनत्व—आत्म स्वरूप का अर्पण—दान करते हुये, गौरव गरिमा—उदात्त

महत्व पर चढे–आरूढ़ हो, पर क्या मजाल कि तुम्हें किञ्चित–कुछ भी गर्व–घमण्ड हुआ हो।

वास्तव में क्षीण होना या वढ़ना दोनों में तुम आत्म-विसर्जन ही करते हो, क्योंकि घटते समय देवगण तुम्हारी सुधा का पान करते हैं और बढ़ते समय प्राणीमात्र तुम्हारे आह्लादक प्रकाश का आदन करते हैं। ऐसी अवस्था में अपने को महत्वपूर्ण जानते हुये भी तुममें गर्व न होना हे शशिन्! छोटे से खरगोश नाम के प्राणी को आश्रय देने से ही सुस्पष्ट है।

यहां अन्योक्ति में साभिप्राय सम्बोधन परिकरालंकार को व्यञ्जित कर रहा है।

१०–अन्योक्तिः

अथवा तुम थकते नहीं, दे दे निज सर्वस्व।
दिव्य दान महिमा अहो, अहो दिव्य वर्चस्व॥

हे चन्द्र! अथवा–या फिर यों कहा जाय कि तुम प्रत्येक कृष्णपक्ष में क्षीणता की ओट में अपना सर्वस्व–अमृत का

महाकुण्ड लुटा लुटा कर भी नहीं थक रहे हो क्योंकि दिव्य दान–अनिर्वचनीय दान की महिमा अनन्त होती है। तुम प्रत्येक शुक्लपक्ष में उसकी पूर्ति कर लेते हो। अतः तुम्हारी शक्ति अद्भुत है।

यहाँ पर निजवर्चस्व दे दे कर भी न थकना चन्द्रसदृश महामनस्वी पुरुष की प्रकारान्तर से प्रशंसा की गई है जो कि दिव्य वर्चस्व आदि शब्दों से व्यञ्जित है।

११–अहिंसा

सहे अहिंसा हंसिनी, असहनीय सहवास।
सदय हृदय के उदय की, भर मानस में आस॥

क्या आपको पता है कि वेचारी अहिंसा रूपी हंसिनी पर कितना भारी संकट आ पड़ा है? कोई भी उसे अपने मानस रूपी मानसरोवर में स्थान नहीं दे रहा, अतः उसे सहन न करने योग्य सहवास इसलिये सहन करना पड़ रहा है कि किसी भी सहृदय के हृदय में कभी न कभी तो दया

का उदय होगा ही, तभी उसके दिन भी फिर जायेंगे। बस यही आशा उसके मानस में भरी है।

यहां रूपकालंकार से मानव मात्र में अहिंसा के प्रति उपेक्षा होना बड़ा ही दुखद है, यह व्यञ्जित हो रहा है।

१२—सत्य

सदा सताता ही रहा, हिंसक क्रूर असत्य।
पर न डिगा डग भर अडिग, निडर साहसी सत्य॥

हिंसक और क्रूर—कठोर असत्य—झूठ, सत्य को सदा सताता रहा है। परन्तु वाह रे सत्य! तुम भी निडर और साहसी बनकर डगभर—पद मात्र भी बिना डिगे—बिना विचलित हुए, अडिग रहे—अविचलित रहे और डगे नहीं—कम्पित नहीं हुए। "सत्यमेव जयते नानृतम्" यह श्रुति वास्तव में स्तुत्य है।

यहां पर समासोक्ति अलंकार से सत्य की यथार्थता का बड़ा ही मनोहर वर्णन किया गया है।

१३—अस्तेय

कहाँ छिपा क्यों पूछते, ओछे शासक हेय !
दीन हीन हतभाग्य के, अब आश्रित अस्तेय ॥

हे हेय—घृणा के योग्य, ओछे—क्षुद्र शासक ! क्यों पूछ रहे हो कि अस्तेय कहाँ छिप गया है ? वह तो जहां कोई दीन हीन हतभाग्य—जिस के पास जीने के लिए दो रोटियां भी नहीं हैं आश्रित है—अब अपने दिन काट रहा है।

यहां पर भी अस्तेय पर समान विशेषणों द्वारा छिपने का आरोप लगाकर यही व्यञ्जित किया गया है कि बेचारा नंगा क्या नहायेगा और क्या निचोड़ेगा।

१४—ब्रह्मचर्य

खिसक गया खिसिया कहाँ, प्रखर नियन्त्रण तन्त्र।
खिसक रहा आहत हुआ, ब्रह्मचर्यव्रत मन्त्र ॥

आज वह पहले समय का प्रखर कठोर, नियन्त्रणतन्त्र—प्रशासन, खिसियाकर—निराश होकर, न जाने कहां खिसक

गया है—चुपचाप चला गया है और ऐसा दीख रहा है जैसे ब्रह्मचर्य पालन करने के व्रत का मन्त्र—रहस्य, आहत होकर—घायल होकर, सिसक रहा है—सिसकियां ले रहा है। यहां भी पूर्ववत् अलंकार से ब्रह्मचर्य व्रत की दुर्दशा का दुःखपूर्ण चित्रण किया गया है।

१५—अपरिग्रह

आः ! कराहती वेदना, गृह गृह विग्रह व्यस्त।
अब निग्रह जीवित नहीं, अपरिग्रह ग्रहग्रस्त॥

गृह गृह विग्रह व्यस्त घर घर की लड़ाई से घिरी बिचारी वेदना—पीड़ा भी आः—दुःख है, कराहती—व्याकुल हो उठी है, ऐसी अवस्था में अब निग्रह—जीवन का वशीकरण, जीवित नहीं मृत हो चुका है अपनी मर्यादा में कैसे रह सकता है ? वह ग्रहग्रस्त हो गया है—उसे तो राहु केतु चिपट गये हैं।

यहां स्वाभाविक अनुप्रास की छटा के साथ अतिशयोक्ति अलंकार के द्वारा असम्बन्ध में सम्बन्ध साधना से अपरिग्रह का पालन परास्त हो गया है।

१६—शौच

उच्छृङ्खल रुचि हो रहा, जब निश्चिन्त अशौच।
शुचिता पद किसको मिले, सोच रहा आशौच ॥

जब अशौच—अपवित्रता का भाव, उच्छृङ्खल—बेलगाम अर्थात् अनियन्त्रित, रुचि—इच्छा का समर्थक, निश्चिन्त—बिना किसी झिझक के हुआ जा रहा है, तब बिचारा आशौच—पवित्रता का उद्देश्य यह सोच सोचकर घुला जा रहा है कि पवित्रता का स्थान किसे मिलेगा।

यहां जड़ पवित्रता में चिन्तन का सम्बन्ध न होते हुए भी जोड़ा गया है अतः सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार का चमत्कार देखते ही बनता है। शब्द लालित्य तो सर्वत्र है ही।

१७—सन्तोष

द्रव्यराशि करवासिनी, कहां दीखता दोष।
देख निरादर भाव का, भटक रहा सन्तोष॥

हाथ के संस्थान में जब तक द्रव्य राशि का निवास है अर्थात् इच्छानुसार धन की प्राप्ति हो रही है भले ही वह अनुचित मार्ग से आ रहा हो, दुःख है कि उसमें दोष दीखता ही नहीं—बस निरादर के उस भाव को देखकर बिचारा सन्तोष भटकता फिर रहा है।

प्रस्तुत पद्य में निरादर को देखकर मानों सन्तोष भटक गया है ऐसी योजना करने पर उत्प्रेक्षालंकार का चमत्कार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है।

१८—तप

जब तप तुम विपरीत बन, हो पत विपत् प्रतीप।
कैसे जगमग हो कहो, दीपित हृदय प्रदीप॥

हे तप ! जब तुम शब्दों विपरीत "पत" बन जाते हो, तभी हमारा पतन होने लगता है किन्तु जब आचरण में भी पत–पतन के रूप में जन्म ले लेते हो तब तो विपत्तियों का ही रूप धारण करके पूरे प्रतीप–उल्टे ही जाते हो, तब बताओ हृदय का दीप्त भी प्रदीप कैसे जगमगा सकता है ?

१६–स्वाध्याय

स्वाध्यायारत हो अरे, ले पुनीत नित वेद।
छिन्न भिन्न सन्देह कर, मिटा भेद सब खेद ॥

अरे मानव ! प्रतिदिन पुनीत–पवित्र वेद लेकर स्वाध्याय में रत–मग्न हो जाओ। देखो इस स्वाध्याय से सांसारिक सन्देह छिन्न-भिन्न करके जितने भी भेद ऊंच-नीचता के हैं उन्हें मिटाकर मानसिक समस्त खेद दूर कर लो।

वस्तुतः वेद ही ऐसी पुस्तक है जिसके स्वाध्याय से समस्त विश्व में शान्ति हो सकती है। सचमुम वेद सार्वभौम धर्म की पुस्तक है। उसका पढ़ना-पढ़ाना, सुनना और सुनाना सभी आर्यों का परम धर्म है ॥

२०—ईश्वर-प्रणिधान

डूब रहा क्यों ऊबकर, इधर उधर धर ध्यान
दुरित निवारण हेतु है, जब ईश्वर प्रणिधान ॥

जब दुरित–पापों के निवारण के लिये ईश्वर प्रणिधान–प्रभु का स्मरण रूप ध्यान रूप से समर्थ है। तब ऊबकर–निराश होकर इधर उधर के ध्यान में क्यों डूब रहा है? अर्थात् जब डूबना ही है तो प्रभु के ध्यान में ही डूबना चाहिए।

दोहे का व्यञ्जनाजन्य भाव यह है कि एक डूबना ऐसा है जो भीषण कष्टदायक है किन्तु दूसरा डूबना ऐसा है जो अत्यन्त आनन्दप्रद है ॥

२१—यमनियमासन

हेपुण्यव्रत रत रहो, यमनियम सन नद्ध।
जगे न जग–की वासना, बन धन साधन बद्ध ॥

हे पुण्यव्रत–पवित्र व्रत ! देखो, यम, नियम और आसन इन तीन योगाङ्गों से नद्ध हो जाओ–पूर्णतया बंध जाओ। नहीं तो सांसारिक वासना के बन्धन से छुटकारा नहीं मिलेगा। भले ही धन के साधन बन कर तुम से आबद्ध हो जायें।

यहां पर जड़ भी पुण्यव्रत में चेतन का आरोप करके उसे एक नियमधारा पर चलने की सलाह दी है। अतः यहां अभेद में भेदातिशयोक्ति है।

२२–प्राणायाम

कण कण करते क्षीण जो, वे नगण्य व्यायाम।
प्राण ! त्राण पाओ जहां, वह शुभ प्राणायाम ॥

वे व्यायाम नगण्य हैं–उपेक्षणीय हैं, जो शरीर की कण-कण थोड़ा-थोड़ा करके जीवनीय शक्ति को क्षीण करते हैं। ये व्या-याम पहले तो शरीर को पुष्ट करते हैं, किन्तु पीछे आयु के साथ क्षीणता प्रदान करते हैं, परन्तु जहां प्राण शक्ति बढ़ती है

हे प्राणों ! वहीं तुम्हारी रक्षा है और वही प्राणायाम शुभ है। हानि पहुँचाने वाले प्राणायाम भी छोड़ देने चाहिये।

केवल चतुर्थ प्राणायाम ही श्रेष्ठ है। इसे चाहे गर्भवती स्त्री हो, चाहे वृद्ध हो, वालक हो अथवा रोगी हो, सभी प्रकार के व्यक्ति कर सकते हैं। इसमें शक्ति के अनुसार धीरे-धीरे गहरे श्वास विना रोके लिये जाते हैं। ओं कहते हुए वारी-वारी से दोनों नथनों से श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं अर्थात् एक नथने से श्वास लेकर दूसरे से छोड़ते हैं।

अथवा

प्राणवायु परिपूर्ण यह, विश्व दृश्य आयाम।
साधु साधना निरतमन, करता प्राणायाम॥

यह समस्त विश्व प्राणवायु से परिपूर्ण है। अतः मन को प्राणों से जोड़ देना चाहिए जैसा कि गोपथ ब्राह्मण में–'मनसि प्राणान् सन्दधीत अर्थात्' मन को प्राणों के साथ जोड़ देने पर समाधि लग जाती है ऐसा लिखा है।

(विधि—ओं कहते हुए बाईं नासिका से धीरे-धीरे श्वास लें और दाहिनी से धीरे-धीरे छोड़ दें। बारी-बारी से श्वास की मात्रा ५-५ सेकन्ड बढ़ाते जायें और प्रतिदिन ५ मिनट तक यह क्रिया करें। धीरे-धीरे ५ से १० मिनट तक बढ़ायें आगे नहीं। रोगी या बालक या वृद्ध अपने लिये पहले प्राणायाम की मात्रा अवश्य समझ लें। गर्भवती स्त्री भी अवश्य जानकारी कर ले।)

२३—प्रत्याहार

जो आकर आकर रहे, वही देह आहार।
ना जा जा आये अहो, वह तुम प्रत्याहार ॥

जो भी पदार्थ भोज्य पेय आदि शरीर में आकर प्रवेश पाकर, आकर-रूप में–खजाने में द्रव्य के समान रहे वह तो आहार है–ग्राह्य है परन्तु जो विचार जा जाकर बाहर फेंका जाकर पुनः प्रवेश न ले अर्थात् मन को निर्विषय हो जाने दे, हे प्रत्याहार! वह तुम हो। इस पद्य में यमक अलंकार है।

२४—धारणा

अरी धारणा धार ना, वह सम्भार-संभार।
जहां आरती रति करे, काम कामनाकार॥

हे धारणे! वाह्य जगत् का सम्भार—सम्वन्ध संभार—संभाल कर रखना मन का आधार नहीं है किन्तु जहां प्रभु की आरती श्रद्धा रति करे-स्नेहबद्ध हो वही कामना-इच्छा के आकार—स्वरूप का काम है अर्थात् कार्य है।

यहां ममकालंकार से धारणा का स्वरूप थोड़े में ही विशद रूप से समझा दिया गया।

२५—ध्यान

शान्त निशा निस्तब्ध हो, पाकर विश्व विधान।
धरती धरती जा रही, किसका अन्तर्ध्यान॥

यह धरती—पृथ्वी, शान्त निशा में—नीरव रात्रि में, निस्तब्ध—वाह्य बाधा से रहित होकर विश्व का—ब्रह्माण्ड

का, विधान पाकर–नियमरूप रहस्य जानकर अन्तः–अपने अन्दर किसका ध्यान धरती जा रही है।

यहां पर यमक, श्लेष और प्रतीयमान उत्प्रेक्षा आदि अलंकार हैं। इसे अन्योक्ति भी कहा जा सकता है।

२६–समाधि

नीरव नीरज भ्रम रहित, साधन सिद्ध समाधि।
नीरव नीरज भ्रम रहित, साधन सिद्ध समाधि॥

नी-रव–शव्द रहित, नीरज–सहस्त्रार दल अर्थात् किसी भी प्रकार के चिन्तनात्मक शव्द व्यापार से रहित सहस्त्रार दल में भ्रम रहित होसे पर, साधन–उपायभूत ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय हो जाने पर समाधि की सिद्धि–पूर्णता होती है। जिस प्रकार नीर वनी–जल के आशय में रज–धूलि आदि या रजोगुण के भ्रम-भ्रमात्मक रूप से रहित होना ही साधन-उपाय वनकर सिद्ध–पूर्ण रूप से समाधि के समान शान्ति का अनुभव होता है।

इस पद्य में महायमक है। तात्पर्यरूप अर्थान्तर होने पर लाटानुप्रास भी बन सकता है।

२७—धृति

हे अंकुश नैराश्यके, शोक मोक शुचि हास।
धन्य धन्य धृति कृति कुशल, कौशल कला विलास॥

हे निराशा के अङ्कुश!—निराशा को रोकने वाले शोक से मुक्त दिलाकर शुचि—शुद्ध रूप में हास-आनन्दायक हे धृतिरूप साक्षात् धर्म! तुम्हारी कृति—रचना में कुशलता के साथ कौशल—लांघवता की कला का विकास धन्य धन्य है—अपने में पूर्ण सफल है यहां पर रूपक द्वारा उत्थापित साभिप्राय विशेषण परिकरालंकार के चमत्कार दिखा रहे हैं।

२८—क्षमा

दीक्षा में दाक्षिण्य की, सदा क्षमा अक्षीण।
शिक्षा में गुरु लक्षकी, रही अक्षमा क्षीण॥

दाक्षिण्य—औदार्य की दीक्षा में—महत्व के प्रतिपादन में क्षमारूप धर्म सदा अक्षीण—पूर्ण समर्थ रहा है किन्तु अक्षमा-क्षमा न करने के भाव का स्वरूप गुरुलक्ष्य की शिक्षा में—महान् उद्देश्य की प्राप्ति के अभ्यास में, क्षीण—पूर्णतया असमर्थ रहा है।

इस पद्य में अचेतन भी क्षमा अक्षमारूप धर्म में चेतनत्व का आरोप अर्थात् चेतन जैसे कार्य करने की शक्ति का उद्-भावन असम्बन्ध में सम्बन्धातिशयोक्ति का जनक है। वृत्या-नुप्रास की छटा है।

२६—दम

तू दम को विपरीत कर, दे दे दम अति दूर।
तभी सभी संसार यह, तुझे कहेगा शूर॥

हे साधक ! तू एक वार मद—तमोगुण के आधीन रहने वाले शव्द, को विपरीत—उल्टा करके उसे दम-जीवन दे दे कर अति दूर—वहुत गहराई तक ले जा। तभी—उस समय,

सभी–समस्त यह संसार तुझे शूर अर्थात् लक्ष्य के ऊपर जीवन तक की अपेक्षा न रखने वाला कहेगा। अर्थात् मद में मनोनिग्रह नहीं वह तो दम से ही निगृहीत होता है। यहां कविप्रौढ़ोक्तिजन्य चमत्कार देखिये कितना सुन्दर है।

३०–काम

करते हो किसका-मना, रहे काम-ना पास।
करो कामना ईश की, रहे काम-ना पास॥

क्यों जी ! किसका मना–निषेध कर रहे हो ? क्या यह कह रहे हो कि काम–वासना का अधिष्ठातृदेव काम देव पास न रहे। देखो जी ! ईश– भगवान की कामना– इच्छा करो तब देखना कामदेव तो क्या संसार का कोई काम शेष नहीं रहेगा। इच्छामात्र का ही उच्छेद हो जायेगा। यहां दोहे के दोनों उत्तरार्धों का यमक बड़ा ही मनोहारी और आदर्श भावना का जनक हो गया है।

३१—अथवा

नहीं काम का काम है, फिर भी काम सकाम।
इस जो हरले काम को, जौहर ले निष्काम॥

साधक के पास काम—कामदेव का क्या काम ? फिर भी आश्चर्य है कि काम—कामदेव, सकाम—सफल है। यहां विरोधाभास अलंकार से दूसरे काम शव्द का अर्थ कामदेव न करके उसका अर्थ प्रभु की प्राप्ति की इच्छा करने पर परिहार हो जायेगा। इस काम वासना को जो हरले वह निस्सन्देह निष्काम भावना का जौहर व्रत पूर्ण करेगा। चारित्रिक व्रत रक्षार्थ अपने को अग्नि में समर्पित कर देना जौहरव्रत है। यहां पर जौहर जौहर दो बार आना यमक का सुन्दर चमत्कार कर रहा है। पूरे पद्य में विरोध और यमक की संसृष्टि है।

३२—क्रोध

क्रोध बोध प्रतिशोध है, हृदय शोध अवरोध।
धवल ध्येय धृत ध्यान का, उद्धत अन्ध विरोध॥

बोध–अन्तर्ज्ञान का, क्रोध–गुस्सा, प्रतिशोध है–बदला लेने वाला है–उसे मटियामेट करने वाला है। हृदयशोध–हृदय की पवित्रता का साक्षात् अवरोध–अर्गलारूप है-ब्रेक है। धवल-स्वच्छ भी, ध्येय-उद्देश्य से धारण किये गये ध्यान-चिन्तन का उद्धत–उद्दण्ड और अन्ध–अन्धा, विरोध–विरोधी है! यहां अचेतन क्रोध पर खल के समान किये गये आचरणों का आरोप समासोक्ति अलंकार को जन्म दे रहा है। वृत्य-नुप्रास की छटा देखने योग्य है।

३३–लोभ

लोभ सचिव सङ्कोच का, दुर्वैभव का भूप।
प्रगतिमार्ग का गर्व गुरु, पाप पङ्क का कूप॥

संकुचित वृत्तियों का लोभ सचिव–मन्त्री है। दुर्वैभव–दरिद्रता का भूप–राजा है। जितने भी प्रगति–बढ़ने के मार्ग–रास्ते हैं उनका गहरा गड्ढा है अथवा उनके गड्ढों का गुरु है। पापपङ्क–पापरूपी कीचड़ का कूप–कुआ है। सर्वत्र रूपकालंकार है।

३४—मोह

कहां मोह तम दूर हो, ले प्रकाश के पुञ्ज।
वहां देखते दृग् नहीं, थोथे ज्ञान निकुञ्ज ॥

कितने भी प्रकाशपुञ्ज—प्रकाशों के ढेर इकट्ठा कर लीजिये पर क्या मजाल कि आप मोह रूपी अन्धकार को दूर कर सकें। अन्धकार में तो आंखें देख भी लेती हैं परन्तु मोह के अन्धेरे में देखना तो क्या उल्टा और भटक जाती हैं। ज्ञान के अन्तर्ज्ञान के बड़े-बड़े निकुञ्ज—लतामण्डप भी थोथे—व्यर्थ पड़ जाते हैं।

प्रकाश से अन्धकार का दूर न होना विरोधाभास का जनक है। ज्ञान निकुञ्ज में रूपक है। मोह का जीतना असम्भव है यह ध्वनि है।

३५—मद

बहुत तरल चूता नहीं, कड़ा बढ़ा नहि पेड़।
नहि प्रबुद्ध होता कभी, लो कितना भी छेड़ ॥

जरा बताइये तो सही यह कौन है ? जो बहुत तरल है पतला है पर छेद होने पर भी नहीं चूता। बहुत ही कड़ा है पर पेड़ नहीं है। कभी भी जागता नहीं है चाहे कितना भी हिला हिला कर देख लीजिये। श्रीमन् ! यह अद्भुत वस्तु मद है। यहां भी प्रकारान्तर से विरोधाभास अलंकार है।

३६—अहंकार

तब तक झङ्कृत हो कहां, प्रीति गीति झङ्कार।
जब तक कटु टङ्कृत रहे, अंहकार टङ्कार॥

प्रीति—प्रेम की, गीति—गान की, झङ्कार तब तक कहां झतङ्कृ—ध्वनित हो सकती है, जब तक अहंकार—क्षुद्र गर्व की, कटु—कानों को निकोचने वाली टङ्कार-दुष्ट ध्वनि, टङ्कृत रहे—गूंजती रहे। यहां मधुर ध्वनि के सार्थक न होने में कटु टङ्कार निष्पादक हेतु होने से काव्यलिङ्गालंकार है।

३७—ज्ञान

जिसे विषय झञ्झा बुझा पाती नहीं प्रतीप।
जय जय जीवन जगत् का, उज्वल ज्ञान प्रदीप॥

ज्ञान का उज्वल-प्रकाशमान प्रदीप जय जय–धन्य है क्योंकि इसे विषयववासना की झञ्झा–आंधी, प्रतीप–उल्टी अर्थात् बुझाने के लिये विरोधी बनकर बहती हुयी भी नहीं बुझा पाती। यह प्रदीप जगत् का जीवन है। इसके बिना संसार कण भर भी आगे नहीं जा सकता, और क्षण भर भी टिक नहीं सकता। दीपक को हल्की हवा भी बुझा देती है पर इसे आंधी भी बुझाने में असमर्थ है। अतः विरोधाभास अलंकार है। ज्ञान का दीप यहां पर रूपक है। जो कि विरोधाभास का अङ्ग हो गया है।

३८—अज्ञान-विज्ञान

मूढ़ हृदय हतभाग्य का, भ्रष्टाञ्जन अज्ञान।
पुण्य पुरुष प्रतिभा प्रभा, धेनु दुग्ध विज्ञान॥

मूढ़ हृदय हतभाग्य पुरुष की आंख का भ्रष्टाञ्जन अज्ञान ही है क्योंकि वह कभी भी किसी के अच्छेपन को नहीं दिखा सकात। यहां पर अज्ञान रूपी निम्न कोटि का

अञ्जन इस रूपक मे हेतु अलंकार के द्वारा विरोधोभास व्यञ्जित हो रहा है।

पुण्य पुरुष भाग्यशाली नर की प्रतिभाजन्य प्रभा–चमत्कृति रूपी धेनु–गाय का दूध ही विज्ञान है। अर्थात् गाय के दूध के समान प्रतिभा की चमत्कृति विज्ञान कहलाती है। यहां रूपक अलंकार का चमत्कार है।

३६–विवेक

सकल साधना सिद्धि का, उद्धृत सत्य विवेक।
जिससे भिड़ पाता नहीं, उद्धत भी अविवेक॥

संसार की समस्त साधनाओं की सिद्धि होने पर जो सार निकलता है, वही विवेक है। जिससे उद्धृत–उद्दण्ड अविवेक कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, किन्तु वह विवेक से नहीं भिड़ पाता अर्थात् दो-दो हाथ नहीं कर पाता। यहां समासोक्ति का चमत्कार स्पष्ट है।

४०–वैराग्य

ज्यों ज्यों राग समृद्ध हो, त्यों त्यों सीमित योग।
होते ही वैराग्य के, अहो असीमित भोग॥

जैसे जैसे सांसारिक राग बढ़ता जाता है वैसे वैसे ही आध्यात्मिक योग सीमित–घटता जाता है। परन्तु वैराग्य के पाते ही भोग अर्थात् प्रभु को भोग लगाना समर्पण करना असीमित सीमा से बाहर हो जाता है।

यहां पर भोग शब्द का समर्पण अर्थ करने पर विरोधाभास की चमत्कृति स्पष्ट ही है।

४१–अथवा

जाया तक ही जागता, राग भोग का योग।
पाते ही वैराग्य के, अखिल विश्व संयोग॥

जब तक संसार में स्त्री का सम्बन्ध है तभी तक राग और भोग का मेल मिलाप है अर्थात् मनुष्य का कुटुम्ब राग

और भोग तक ही रहने से बहुत छोटा रहता है परन्तु वैराग्य के पाते ही समस्त विश्व ही कुटुम्ब बन जाता है।

वस्तुतः वैराग्य होने पर तो संसार ही छूट जाता है तब कुटुम्ब का बड़ा होना असम्भव है। ऐसी स्थिति में प्राणी मात्र के प्रति प्रीति बढ़ जाना रूप व्यञ्जना के कारण इस पद्य से विरोधाभास अलंकार ध्वनित होता है।

४२—वैभव

वैभव सम्भृत-सर्वदा, सकल विश्व का कोष।
कोई कर पाया नहीं, अणु कण तक का शोष॥

सकल विश्व—समस्त संसार का कोष—अन्तराल अर्थात् मध्य-भाग सर्वदा वैभव—ऐश्वर्य से सम्भृत—परिपूर्ण है, उसके अणु कण परमाणु मात्र का भी शोष—शोषण आज तक कोई नहीं कर पाया। प्रभु का नियम है कि संसार की कोई भी वस्तु कम नहीं होती। केवल रूपान्तर होती रहती है। मनुष्य का शरीर भी जलकर अपने अपने तत्वों में मिल

जाता है–समाप्त नहीं होता अर्थात् उसकी सत्ता सूक्ष्म रूप में तो रहती ही है। यहां सांसारिक वैभव से प्रभु के वैभव की महत्ता का वर्णन–सांसारिक सम्पदा से मुंह मोड़कर प्रभु के अखण्ड वैभव को प्राप्त करना व्यञ्जित कर रहा है।

४३—तृष्णा।

किसका शोषण कर रहे, है किससे शुचि स्नेह।
अरे छोड़नी अन्त में; यह सुन्दर भी देह॥

हे मानव! जरा यह तो सोच कि तू किसका शोषण कर रहा है? तेरा किससे स्नेह है? अरे भोले मानव! अन्त में यह सुन्दर देह भी छोड़नी पड़ेगी। अर्थात् यदि तू यह शोषण अपने शरीर के लिये इन्द्रियों के बहकावे में आकर कर रहा है तो यह तो एक दिन नष्ट हो जायेगा और शोषण का पाप तुझ आत्मा को भोगना पड़ेगा। अतः तृष्णा को छोड़कर 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' कर्म करते हुए सन्तोष के चरण पकड़कर सदाचरण के साथ जीवन बिताना चाहिए।

४४—अथवा

तेरी तृष्णा आज तक, हुई कभी क्या पूर्ण ।
तू तो कण तक का अभी, पचा ना पाया चूर्ण ॥

हे मानव ! क्या तेरी तृष्णा आज तक भी कभी पूर्ण हो पाई है ? क्या तुझे पता है कि तू तो अभी तृष्णा के कण तक का चूर्ण भी पचा नहीं पाया ? अर्थात् तृष्णार्जित वस्तु का अणु मात्र भी तुझे सन्तुष्ट नहीं कर पाया। देख ! खाने के बाद फिर खाना पड़ता है। पीने के बाद फिर पीना पड़ता है। पहनने के बाद फिर पहिनना पड़ता है। ऐसा नहीं कि इनमें किसी एक भी वस्तु के सेवन के पश्चात् सदा के लिये पिण्ड छूट गया हो। अतः मुक्ति की ओर पैर बढ़ा।

४५—वासना

विरला हरता वासना, जाल ठोक कर ताल ।
पञ्जरभञ्जन केसरी, ज्यों करता तत्काल ॥

कोई विरला ही व्यक्ति होता है जो वासना के जाल को ताल ठोककर चैलेञ्ज देकर अर्थात् ललकार कर छिन्न-भिन्न कर देता है। जैसे केसरी–बब्बर शेर मोटे-मोटे सींकचों वाले भी पिञ्जरे को तत्काल--एकदम भञ्जन कर देता है–तोड़-फोड़ डालता है। प्रस्तुत पद्य में दृष्टान्तालंकार है।

अथवा

विषय वासना से नहीं, जिसका आहत मर्म।
सच्चा शोभित हो रहा, वही वीरता धर्म॥

विषय वासना से जिसका मर्मस्थल आक्रान्त नहीं होता, वही सच्चा वीर है। उसी की शोभा है। वही वीरता का धर्म है।

४६—संस्कार

प्रस्तुत संख्यातीत है, संस्कार व्यापार।
जिनका परिशोधन विना, कभी न पाता पार॥

प्रस्तुत -भोगे जाते हुए भोगों के असंख्य संस्कार हैं जिन का कि विना संशोधन किये वारापार नहीं। जब तक संस्कार पवित्र नहीं बनेंगे, वे बार बार बन्धन में डालते रहेंगे और भोगों की सृष्टि करते रहेंगे। अतः वैदिक आचार पद्धति का पालन अनिवार्य है।

४७—उज्वलता

ईश्वर कृति का सार है, यह अशेष संसार।
उसमें जीवन जीव में, उज्वलता ही सार॥

ईश्वर की रचना में यह पूरा संसार ही श्रेष्ठ है। उस संसार में भी जीवन शक्ति श्रेष्ठ है और उस जीवन में जीव की श्रेष्ठता है परन्तु जीव में भी उज्वलता–प्रकाशशीलता अर्थात् पवित्रता आदि गुण श्रेष्ठ हैं। यहां उत्तरोत्तर उत्कर्ष का वर्णन होने से सारालंकार है।

४८—धर्म

ईश्वर में ही नेह हो, केवल सद्गुण इष्ट।
सज्जन जिससे सेव्य हों, वही धर्म आदिष्ट॥

केवल ईश्वर के सद्रूप गुणों के अभ्यास के लिये ही ईश्वर में स्नेह होना चाहिये। अर्थात् उसकी भक्ति करनी चाहिए। साथ ही जिससे सज्जन सेव्य–सेवा के योग्य हों–अर्थात् ईश्वर के गुणों का अभ्यास ही सज्जनों की सेवा करा सकता है। यही सच्चा धर्म का लक्षण है।

अथवा

परकृत जो नहि आत्मगत, है होता व्यवहार।
निजाचरण में उसी का, हुआ सदा परिहार॥

परकृत–दूसरे के द्वारा किया गया व्यवहार जो आत्मगत नहीं–होता अपने को अच्छा नहीं लगता। इसीलिये अपने आचरण में उसका परिहार होता है, तो वह साक्षात् धर्म है।

४६–सत्सङ्ग

देता मानस लोह जब, चिन्तन को निज अङ्ग।
करता वर्ण सुवर्ण तब, पारसमणि सत्सङ्ग॥

जब मन रूपी लोहा चिन्तन रूपी पारसमणि को अपना अङ्ग देता है, तब वह पारसमणि रूपी सत्सङ्ग उस लोहे के वर्ण–रंग को सुवर्ण–अच्छे रङ्ग वाला–अर्थात् सुवर्ण–सोना बना देता है। यहां रुपाकलंकार का चमत्कार स्पष्ट है।

५०–शील

जिससे किल्विष लोह की, हो उन्मीलित कील।
सुकृत विकृत हो नहि वही, सज्जन सम्मतशील ॥

जिस साधन से पाप रूपी लोहे की कील निकल आये अर्थात् जो पापरूपी कील हृदय में गड़ी है वह निकल आये और जिससे सुकृत--पुण्य विकृत–कलङ्कित न हो वही सज्जनानुमोदित शील है। यहां भी रूपक है॥

५१–अथवा

सर्व हृदय का हार हो, सत्पथ से नहि हार।
सारक दोषों का रहे, यही शील का सार॥

जिसे संसार के समस्त प्राणीमात्र चाहते हों। जिसके कारण श्रेष्ठ आचरण से वञ्चित न हो सके। जो दोषों को निकालने में समर्थ हो, वही वास्तव में शील है। इस पद्य में हार-हार, सार-सार आदि एक से शब्दों का एकाधिक प्रयोग शब्दालंकार यमक की सृष्टि कर रहा है।

५२—सदसद्योगाभाव

दुर्जन दुर्जल का कहां, सज्जन मज्जन योग।
सन्मानव पीयूष का, खल में खले प्रयोग॥

दुर्जन और दुर्जल—गन्दे जल का सज्जन और मज्जन—स्नान के लिये याग कहां से हो सकता है। दुर्जन के साथ मज्जन का योग नहीं वैठता इसी प्रकार जैसे दुर्जल—दुष्ट जल अर्थात् विकृत जल में मज्जन—स्नान का योग नहीं वैठता।

इसी प्रकार सन्मानव—श्रेष्ठ मनुष्य और पीयूष—अमृत ये दोनों खल में—दुष्ट में, तथा खल में—तेल निकली हुयी खली में प्रयुक्त कैसे हो सकते हैं?

यहां पर यथासख्यालंकार और श्लेष तथा सज्जन भज्जन का शब्द साहश्य देखने योग्य है।

५३–हा भारती

अहो विश्व अध्यात्म की, सर्व सुधा का सार।
हा भारत की भारती, भारत में ही भार॥

अहो ! आश्चर्य है कि विश्व–समस्त संसार के अध्यात्म ज्ञान का, सर्व सुधा का सार–अमृतरूप तत्व, भारत की–भारत देश की, भारती–संस्कृति, भारत में ही–अपने ही देश में, भार होकर रह गई है।

अर्थात् जिस अमृत तत्व रूपी संस्कृति के स्वरूप के दर्शनार्थ विश्व तड़प रहा है, उसी की भारत देश में दुर्दशा हो रही है, ऐसे देश के ऐसे (आस्तीन के सांप) धिक्करणीय हैं।

५४–हिन्दी

भारत माँ के भाल की, बिन्दी हिन्दी आज।
हन्त ! मिटाता जा रहा, शासक सभ्य आज॥

भारत माता के भाल की–माथे की, (अर्थात् उच्चकोटि की) हिन्दी रूपी जो बिन्दी है (तिलक है) उसे हन्त–दुःख है कि सभ्य शासक समाज ही मिटाता जा रहा है। यहां रुपक अथवा उत्प्रेक्षा अथवा दोनों का सन्देह संकर है।

५५–सभ्यता-भारती

करके सप्तम्भोधि की, सीमा सीमित सद्य।
कभी सभ्यता भारती, भाती थी अनवद्य॥

कोई दिन था जब सातां समुद्रों की सीमा को बिजली की तरह पार करके भारत की पवित्र सभ्यता शोभित होती थी। आज तो योरोपीय वेश है, खान–पान, रहन–सहन, सब वहीं का बढ़ता जा रहा है। स्ववेश, स्वभाषा, स्व-सभ्यता, स्वसंस्कृति, स्वभोजन, स्वप्रयोजन सभी का मुंह लटक गया है।

(सीमा–हद, सप्ताम्भोधि–सात समुद्र, सीमित-संकुचित, सद्य–शीघ्र, अनवद्य–दोष रहित अर्थात् पवित्र।)

५६—अथवा

अथवा भारत सभ्यता, देख प्रभावित श्वेत।
हुए पश्चिमी देश थे ये शत शत समवेत॥

अथवा पश्चिमी प्रदेशों के ये शत शत समवेत-सैकड़ों सैकड़ों व्यक्तियों के झुण्ड के झुण्ड भारत की सभ्यता को देखकर इतने प्रभावित हुए कि वे अतिगौरवर्ण होने के बहाने श्वेतवर्ण हो गये।

अर्थात् वे वास्तव में गौरवर्ण नहीं थे अपितु हमारी शुभ्रसभ्यता ने उन्हें श्वेत कर दिया। यहां उत्प्रेक्षालंकार का चमत्कार स्पष्ट है।

५७—स्वदेशादर्श

भारतीय आदर्श ही, रहा विश्व का हर्ष।
क्या विक्षत हो जायगा, वह रक्षित उत्कर्ष॥

वस्तुतः–भारतीय आदर्श ही विश्व के हर्ष–उल्लास का हेतु रहा है। क्या यह सुरक्षित भारतीय उत्कर्ष हमारी अकर्मण्यता से विक्षत -घायल हो जायेगा। उत्कर्ष में घायल होने का आरोप प्रतीयमान उत्प्रेक्षा को उपस्थित कर रहा है। अर्थात् उत्कर्ष का क्षीण होना मानो घायल होना है॥

५८–अन्तर्वेदना

हे स्वदेश की सभ्यते, हे स्वदेश के वेष।
हे स्वदेश संस्कृति सुधे, आज किधर हो शेष॥

हा स्वदेश की सभ्यते ! हा स्वदेश के वेश ! हा स्वदेश की संस्कृति रूप अमृत ! आज तुम किधर शेष हो ? यहां करूणात्मक भावालंकार है।

५९–देश दुर्दशा के संकेत

दुर्गति, दारुण, दीनता, द्रोह दोष विद्वेष।
देश दशा दूषित दिशा, निर्देशक निर्देश॥

दुर्गति, दारुण–भयंकर, दीनता–गरीबी, द्रोह–आन्तरिक कटुता, दोष–दुर्गुण और दुर्व्यसन, बिद्वेष–शत्रुता आदि, देश दशा–राष्ट्र की अवस्था की दूषित–कलङ्कित, दिशा–सरणि के निर्देशक बताने वाले, निर्देश-संकेत हैं। यहां वृत्यानुप्रास की छटा देखने योग्य है।

६०—वीर

जो स्वदेश विद्वेष दृढ़, दानव के दुर्दान्त।
ले उखाड़ जड़ से त्वरित, वही वीर बलवन्त॥

जो स्वदेश-विद्वेष रूपी पक्का दानव है। उसके अहंकार रूपी दांत जो तत्काल जड़ से उखाड़ फेंके वही वीर है। यहां रूपक का चमत्कार है।

६१—शूर

दुर्हृद अहित अहि की त्वरित, कर-फीको फुङ्कार।
बढ़े राष्ट्रहित शूर की, घन घुङ्कृत घुङ्कार॥

दुष्ट हृदय वाले अहित रूपी अहि–सर्प की फुङ्कार फीकी करके राष्ट्रहित का ध्यान रखने वाले शूर को गर्जते हुए घनघोर मेघ के सामान कड़कड़ाकार तत्काल बढ़ना चाहिए। रूपकानुप्रापित पर्यायालंकार।

६२–अथवा

खड़े भले हों शत्रु के, धृत विविधापुध रेङ्क।
डट पाते नहि शूर के, निकट विकट भी टैङ्क॥

भले ही धृतविविधायुध–तरह तरह के शस्त्र लिये शत्रु के रेङ्क–समूह निकट रहते हुए भी रत्ती भर भी कुछ नहीं विगाड़ पाते। विधिरपि विभेति–तस्मान्निरतिशयं साहसं यस्य अत्यन्त साहसिक सूरमा से तो विधाता भी डरता है प्रस्तुत पद्य में अनुप्रास की छटा तथा ओज गुण ने दोहे में चार चाँद लगा दिये हैं।

६३–संसार-बन्धन

जगज्जाल जञ्जाल का, फैला विस्तृत अङ्ग।
फिर फिर फंसता जा रहा, जिसमें जीव विहङ्ग॥

सांसारिक मोह का जाल इतना, घना फैला है कि उसमें कितना ही बचकर निकल भागने वाला जीवरूपी विहङ्ग-पक्षी फंसता ही जा रहा है। यहां पर रूपकालंकार का बड़ा मधुर चमत्कार है साथ ही तत्सदृश रचना से और भी आकर्षण बढ़ गया है।

६४–भवभीति

आः अपार संसार के, सागर का नहि पार।
डगमग डोंगी देह की, कैसे उतरूँ पार॥

आः! इस अपार संसार रूपी सागर का कहीं भी वारापार नहीं। इसे पार करने के लिये देह रूपी डोंगी–छोटी सी किश्ती डगमगा रही है–हिचकाले ले रही है। बताइये कैसे पार उतरा जाये। यहां भी रूपक ने भयानक रस के निष्पादन में अनुरूप अनुप्रास की सहायता लेकर सुन्दर चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

६५–मन के लिये आश्वासन

यह अपार पर पार है, सागर सा संसार ।
प्रभु चप्पू दे चरण के, क्षण भर मुझे उधार ॥

यह सागर जैसा संसार अपार होते हुए भी पार किया जा सकता है। परन्तु शर्त यह है कि क्षणभर के लिये प्रभुदेव अपनी स्मृति के चरणों के चप्पू मुझे उधार दे दें। यहां पर उधार शब्द ईश्वर तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न भले ही करता रहे तथापि ईशस्मरण मात्र से विकट संकटों का भी टलना संभव हैं यह ध्वनि दे रहा है। यहां उपमा-रूपक-अनुप्रास आदियों की संसृष्टि है।

६६–प्रभु महिमा

अहो नभोगत कर दिया, कैसे जलधि महान् ।
अनाधार ही तान कर, वारिद वारि वितान् ॥

अहो ! आश्चर्य है कि बिना किसी आधार के ही यह महान् जलधि–समुद्र कैसे नभोगत-आकाशगत कर दिया है। देखिये न ! जल पूर्ण बादल किस प्रकार आकाश में दूर दूर तक तम्बू सा बना कर तन गया है। यहां उत्प्रेक्षालंकार अनुप्रास की सहायता से बड़ा ही निखर गया है।

६७–अनूठी उक्ति (कुहरे का आकर्षक वर्णन)

ढाप रहा मुख दिवस भी, शिशिर शीत अति भान।
गहरे कुहरे की लिये, चादर सादर तान ॥

इस शीतकाल में देखिये–दिवस बेचारा अपने मुख को अर्थात् प्रभातकाल के स्वरूप को शिशिर काल के शीत को सहन करके गहरे कुहरे की चादर सादर–स-आदर भय के मारे अथवा अपनी रक्षा के आदर में तान करके ढाप रहा है–ओढ रहा है। यहां उत्प्रेक्षा का चमत्कार शिशिर शीत का दिवस को चेतन के समान ठण्ड देने का सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्धित करके अतिशयोक्ति को जन्म दे रहा है।

६८—अनूठी उक्ति (वृक्ष-कम्पन)

प्रबल हिमालय भी हुआ, उधर हिमाहत हन्त।
पवनाकम्पित तरु निकर, लगे कांपने सन्त ॥

शक्तिशाली हिमालय पर्वत भी हिम – बर्फ से आहत आक्रान्त हो गया है। हन्त !—बड़ा खेद है यह। तभी तो हवा से हिल हिल कर तरु निकर-पेड़ों के झुण्ड के झुण्ड बेचारे सज्जन पुरुषों के समान शीत से कांप उठे है। यहां भी पेड़ शीत से कांपना असम्बन्धे सम्बन्धातिशयोक्ति के साथ प्रतीयमान उत्प्रेक्षा को प्रस्तुत कर रहा है।

६९—अनूठी उक्ति (प्राकृतिक-सन्ध्या)

प्रातः सायं नियम से, हो सन्ध्या संलग्न।
प्रकृति नटी भी दीखती, हुई ध्यान में मग्न ॥

ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो प्रकृतिरूपा नटी—नटनी भी प्रातः सायं सन्ध्या मे ध्यानावस्थित होकर निस्तब्ध होने के कारण ध्यान में मग्न है। यहां पर प्राकृतिक निस्तब्धता पर उत्प्रेक्षा करके इस अलंकार को चमत्कृत कर दिया गया है।

७०—अनूठि उक्ति (ईश-स्मरण)

अकथनीय कमनीय इस, बेला में ला ध्यान ।
खगकुल कलरव लीन हो, करता प्रभु गुणगान ।।

अकथनीय अनिर्वचनीय, और कमनीय अतिमनोहर इस वेला सन्ध्याकाल में ध्यान ले ले कर खगकुल—पक्षियों का वृन्द अपने कलरव—मनोहर चहचहाहट में लीन अर्थात् तल्लीन होकर मानो प्रभु का गुणगान कर रहा है। यहां भी उत्प्रेक्षालंकार अनुरूप अनुप्रास से खिल उठा है।

७१—आतिथ्य

शोभा विकसित सुमन ले, आता देख वसन्त ।
स्वागत पिककुल गीति में, करने चली तुरन्त ।।

अपनी शोभा में पूर्ण विकसित—खिले हुए सुमन—फूलों को लेकर आते हुए वसन्तकाल को देखकर पिककुल—कू-कू करती हुयी कोयलों का समूह का समूह स्वागत करने के

लिये तत्काल तत्पर हो गया है। अचेतन जगत् में चेतनतत्व का आरोप और अज्ञ जगत् में प्राज्ञतत्व का प्रतिपादन अतिशयोक्ति समुत्थापित समासोक्ति की ओर संकेत कर रहा है।

७२—आतिथ्य

मधुर मधुपरवसे कुशल, पूछा मधु ने सद्य।
सुखद वचन रचना चतुर, सन्त सदा अनवद्य ॥

मीठे मुँह वाले, मधुर- माधुर्य के पान कर्ता भ्रमर के रव से-गुज्जन से मधु ने - वसन्त ने शीघ्र ही कुशल प्रश्न पूछ ही तो लिया। क्यों नहीं पूछता, क्योंकि आनन्दप्रद वचनों की रचना में चतुर, सज्जन सर्वदा निर्दोष, पवित्रता से पूर्ण देखे गये हैं। प्रस्तुत पद्य में पूर्व अर्थ का सार्थक समर्थक अर्थान्तरन्यासालंकार अपना लालित्य ला रहा है।

७३—मनोदर्पण

बढ़ा बुढ़ापा आ रहा, करता तुझे कुरूप।
शुचि शीशा मन का लिये, अन्दर देख स्वरूप ॥

हे समृद्ध वृद्ध - क्या तुम्हें पता है कि यह बढ़ता हुआ बुढ़ापा तुम्हें कुरूप करता हुआ आ रहा है; मन का स्वच्छ शीशा-दर्पण लेकर अन्दर अपने रूप को देखो।

७४–संसार-बन्धनमुक्ति

भव बन्धन भव बन्धन, भावनिबन्धन बन्धु।
सुख सागर सुख सागर; यही सुधा का सिन्धु॥

संसार-बन्धन भी है और मुक्ति भी है। भव–संसार बन्धन है, क्योंकि इसमें बंधकर मनुष्य प्रगति नहीं कर पाता, परन्तु भव–संसार बन्ध–बांधने वाला न–नहीं है, क्योंकि इससे भावों के निबन्धन–पवित्र भावों के उद्भव भी होते हैं। मनुष्य शरीर के द्वारा ही साधना करता है। यह संसार सुख का सागर है क्योंकि इसके माध्यम से आनन्द मिलता है और यही सुख-सा गर–विष भी है क्योंकि इसमे मोहादि में फंस जाता हैं। पर वास्तव में तो यह सुधा–अमृत का सागर है–क्योंकि इसके माध्यम से ही–अमृतत्व की प्राप्ति होती है। यहां यमकालंकार का चमत्कार है।

७५—यज्ञमय-जगत्

यज्ञकुण्ड ब्रह्माण्ड का, ग्रह गण गुरु अङ्गार।
अहो रात्र हवि होम की, सोम भव्य भृङ्गार॥

समस्त खुला हुआ ब्रह्माण्ड यज्ञकुण्ड है। रात में दीखने वाले तारे चमकीले अङ्गारे हैं। दिन और रात्रि होम को हवि शाकल्य या सामग्री है चन्द्रमा यज्ञकुण्ड के पास रखा हुआ भव्य कलश है। ग्रहगण—तारों का समूह, अहोरात्र-दिन और रात्रि, सोम—चन्द्रमा, भव्य—मनोहर, भृङ्गार—सुराही है कलश स्थानीय हैं। कोशमें है—भृङ्गारः कनकालुका। प्रस्तुत पद्य रूपकालङ्कार से चमत्कृत है।

७६—यज्ञमय जगत् से उपलब्धि

जगद् यज्ञमय हो रहा, अरे कहाँ तू व्यग्र।
सो ना, सोना ले बना, अब आयुष्य समग्र॥

अरे साधक! तू कहां चिन्ता में जल रहा है? उठ सो ना—सो मत अब अपनी समस्त आयु को सोना—सुवर्ण—अमूल्य

निधि बना ले। यहां पर लाटानुप्राश पदगत है इसी का चमत्कार है अथवा इसे यमकालकार का पद देकर सम्मानित किया जा सकता है।

७७—यज्ञमय देह

देह कुण्ड मन वचन युत, कर्म समित्कह ओम्।
ज्ञान वन्हि कर दीप्त-द्रुतं, शुभाचरण हवि होम ॥

देखिये ! यह देह अग्निकुण्ड है। मन वचन कर्म की समिधायें ओं कहकर दी जाती हैं। इसमें चेतन सत्ता के लिये ज्ञान की वन्हि—अग्नि, दीप्त की जाती है और शुभाचग्ण—पवित्राचरण की हवि होमी जाती है। यहां भी रूपकालंकार का चमत्कार है।

७८—मूर्तिपूजा का अनौचित्य

पूज रहा पाषाण तू, प्रतिमा मान महान्।
लगता भूतल का मुझे, कण कण ही भगवान ॥

तू पाषाण—पत्थर को ही प्रतिमा के रूप में महान् मानकर पूज रहा है। मुझे तो भूतल का—पृथ्वी तल का कण कण ही भगवान् लग रहा है। अर्थात् कण कण में समाया होने से सर्वत्र भगवान दीख रहा—अनुभूत हो रहा है। यहां उक्तिवैचित्र्य का ही चमत्कार है।

७६—भगवान का अवतार नहीं

सत्ता का उसकी बता, कहाँ नहीं अवतार।
पुम विशेष से फिर लिपट, चिपट गया क्यों प्यार॥

हे पूजक ! जरा यह तो बता कि उसकी सत्ता का कहां अवतार नहीं। कौन सा स्थान उसकी सत्ता से रहित है ? फिर किसका अवतार और कहां अवतार। पता नहीं पुम विशेष रामादि के नाम से फिर चिपट कर और उसी की सिद्धि में लिपट कर तेरा प्यार क्यों भटक रहा है। यहां भी उक्ति विचित्रता ही चमत्कृत है।

८०—सज्जन दुर्जन विश्लेषण

नेत्राञ्जन सज्जन सजा, दुर्जन कज्जल नव्य।
उज्वलता मालिन्य के, दोनों अद्भुत द्रव्य ॥

सज्जन पुरुष नेत्र के अञ्जन के समान होता है क्योंकि वह प्रकाश देता है। दुर्जन व्यक्ति कज्जल—काजर—काले तवे की कजली के समान नव्य—नया—विपरीत लक्षणा से अविश्वसनीय होता है। अज्ञात व्यक्ति नया कहलाता है। बस उज्ज्वलता और मलिनता ये दोनों अपने अपने स्थान पर अद्भुत द्रव्य हैं—विचित्र चीज हैं। यहां भी उक्ति वैचित्र्य ही है।

८१—सच्चा सन्त

अहो महत्ता सन्त की, होकर विश्व विरक्त।
दुःख देख होता द्रवित, दीन दशा अनुरक्त ॥

सन्त की महत्ता अहो—आश्चर्यजनक है। वह दूसरों का दुःख देखते ही द्रवित हो जाता है—हृदय से पिघल जाता है

और दीन दुखिया की दुर्दुशा दूर करने में अनुरक्त हो जाता है—तत्पर हो जाता है। यह तब है जब वह विश्व विरक्त होता है, उसे समता की दृष्टि के कारण किसी भी व्यक्ति से लगाव नहीं होता।

विरक्त का अनुरक्त होना परस्पर विरुद्ध है अतः अनुरक्ति का अर्थ तत्पर कर देने पर—यहां विरोधाभास अलंकार का स्वाभाविक चमत्कार ध्यातव्य है।

८२—भ्रष्टाचार

शिथिल नियन्त्रण तन्त्र पा, अनियन्त्रित आचार।
राष्ट्र कण्ठ झट घोटता, बनकर भ्रष्टाचार ॥

अनियन्त्रित—वेलगाम का आचार रूपी घोड़ा शिथिल—ढीला नियन्त्रणतन्त्र— प्रशासन, पाकर भ्रष्टचार का स्वरूप धारण करके झटपट राष्ट्र कण्ठ—देश का गला घोटने लगता है। अर्थात् स्वच्छन्द आचरण ही भ्रष्टाचार बन जाता है

जिससे देश का सांस घुटने लगना है। यहां अतिशयोक्ति अलंकार की छटा सराहनीय है।

८३—दुश्शासन

धवल धर्म निरपेक्ष बन, ले कुविचार प्रचण्ड।
चीर हरण करता सदा, दुश्शासन उद्दण्ड॥

दुष्ट शासन के रूप में महाभारत कालीन दुश्शासन आज के धर्म निरपेक्ष सिद्धान्त की आड़ लेकर प्रचण्ड—भयानक कुविचारों का चक्र चला कर सत्यनिष्ठा की द्रौपदी का सदा ही चीर हरण—सत्यव्रतभङ्ग करता रहता है। यहां पर उप-मेय वृत्ति का उपमान में असंभवना के रूप में निदर्शनालंकार का विशिष्ट भेद बड़ा ही भव्य बनकर प्रयुक्त हुआ है।

८४—कुकर्म की क्रूरता

कर मर्माहत धर्म को, हँसता क्रूर कुकर्म।
दीन वत्सला देख द्रुत, धँसी धरा में शर्म॥

धार्मिक बन्धनों के मर्मस्थल पर चोट करके क्रूर कुकर्म हंस रहा है। यह देख कर विचारी लज्जा दीनवत्सला होने के कारण–दीन दुखियों के दुःख न देख पाने की आदत होने से धरा में–भूमि में धंसी जा रही है। असम्बन्ध में सम्बन्धातिशयोक्ति का चमत्कार देखिए कितना आकर्षक हो गया है ?

८५–असत्याचारण की प्रसन्नता

राम राज्य के ढोंग में, दुश्शासन की लूट।
देख चकित चिन्ता हुई, उछल पड़ा झट झूठ ॥

रामराज के ढोंग में दुश्शासन–भ्रष्ट शासन ने जो लूट मचा रक्खी है उसे देखकर स्वाभाविक चिन्ता का बढ़ जाना आश्चर्य कारक नहीं तो और क्या है ? और झूठे व्यवहार का बढ़ जाना झूठे व्यक्तियों को उत्साहित करना नहीं तो और क्या है ? यहां निरोधाभासालंकारोत्थापित अतिशयोक्ति बड़ी अनूठी उक्ति की जनक हो गई है।

८६—राष्ट्र सुधार संकटग्रस्त

आशा भी भाषा नहीं, माशा भर भी शेष।
मौन निराशा रह गई, देख रहा यह देश॥

राष्ट्र सुधार की आशा की कौन भाषा हो, इसका सूत्र ही ही नहीं मिल रहा, क्योंकि वह तो माशाभर भी—एक ग्राम की मात्रा भर भी शेष नहीं है। इसलिये विचारी निराशा मौन होकर रह गई। देश इस परिस्थिति को अच्छी प्रकार देख रहा है—अनुभव कर रहा है। असम्बन्ध में सम्बन्धातियोक्ति को देखिये कैसी विचित्र उक्ति है।

८७—कर्म-फल

यह अखण्ड ब्रह्माण्ड ही, विरचित कर्म प्रधान।
यथाकर्म फल भोगते, व्यक्ति समाज समान॥

यह अखण्ड ब्रह्माण्ड समस्त विश्व ही, कर्म प्रधान—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्-कर्म करते हुये ही जीने की

इच्छा करनी चाहिये इस वैदिक सिद्धान्त के अनुसार विरचित है– बना है। अतः इसमें चाहे कोई व्यक्ति हो- अकेला हो चाहे समाज के रूप में रहता हो, यथाकर्म–जैसा भी कर्म किया है उसी के अनुसार फल भोगना पड़ता है। अतः पवित्रात्माओं को यह सांसारिक क्लेश लेशमात्र भी विचलित नहीं कर पाते।

८८–भोग-महिमा

उज्वलता मालिन्य सम, सभी शुभाशुभ भोग।
नहीं किसी गुणधर्म का, ढलता दृढ संयोग ॥

उज्वलता ओर मालिन्य इन दोनों के समान ही शुभ और अशुभ भोग वनते हैं। अर्थात् मानव के शुक्ल संस्कारों के आधार पर ही यह सब सुख दुखात्मक जगत खड़ा है। क्योंकि किसी भी गुणधर्म वाले पदार्थ का भोग के साथ दृढ संयोग होने से उनका पारस्परिक संभोग शिथिल नहीं पड़ता। यहां हेतु अलंकार है।

८६—प्रभु महिमा

नहीं चन्द्र की चाँदनी, नहि चाँदी का घोल।
यह तो प्रभु की भव्यता, धवलित वसुधा झोल॥

यह जो दूध जैसी चाँदनी छिटक रही है यह चाँद की चाँदनी नहीं है और ना ही चाँदी का झोल किसी ने चढाया है। यह जो समस्त भूभाग धवल हो उठा है उसमें प्रभुदेव की भव्यता का वैभव ही भासित है। यहां अपन्हुति समुत्थापित उदात्तालंकार है।

९०—कूट पद्य १ (अनेकार्थक रचना)

नभ तारक तारक नहीं, भव तारक तू देख।
निज तारक पढ़ते रहे, मिले न तारक लेख॥

आकाश के तारे किसी के तारक नहीं, तू तो भवतारक परमेश्वर को देख। यह सुनकर निजतारक—अपने को तारक बनाने वाले पढ़ते ही रह गये, पर उन्हें तारक लेख नहीं

मिले। यहां विरोधाभास अलंकार है। इस पद्य के और भी अनेक अर्थ हैं, पाठक बुद्धि लड़ाकर जरा पड़ताल तो करें जैसे—दूसरा अर्थः—नभ तारक–आकाश के तारे क्या आकाश के तारक नहीं ? नहीं तो आकाश की शोभा ही न ली जाती। भवतारक–जगत् के तारक–सज्जनों को देख। जो निज–अपने को ही तारक पढ़ते रहे–समझते रहे उन्हें।

६१–कूट पद्य २

आप पा-पकरते सदा, देख हृदय सन्तुष्ट।
पा-पकरेंगे यदि नहीं, होंगे सब जन रुष्ट॥

आप पाप सदा करते हैं यह देखकर हृदय सन्तुष्ट है। यदि आप पाप नहीं करेंगे तो सब जन रुष्ट हो जायेंगे। यह अर्थ व्यवहार में—समन्वित नहीं है अतः शब्द श्लेष के बल पर–पा–पकरते–भगवान् के पांव पकड़ते हैं ऐसा सर्वत्र पा शब्द को अलग करके यदि पढेंगे तो अर्थ तत्काल समन्वित हो जायेगा।

यहां श्लेषालंकार का चमत्कार है। पूर्व पद्य (९० सं०) में भी श्लेष का ही चमत्कार है किन्तु शब्द और अर्थ तथा उपमार्थक श्लेष-रचना की वहां अपनी-अपनी छटा निराली है।

९२—अन्योक्ति १

शुभ्र वेश ध्वनि मधुर सुन, क्यों श्रद्धा आधीन।
चातक आता सामने, जलद शरत्कालीन॥

हे चातक ! शुभ्र वेश और मधुर ध्वनि को सुनकर क्यों इसके प्रति श्रद्धा बढ़ा रहा है। यह तो सामने आता हुआ शरत्काल का बादल है। गरजता मीठा है, वेश भी शुभ्र है पर पानी मीठा नहीं बरसाता। यहां प्रस्तुत बादल से अप्रस्तुत किसी भी छद्मवेशी की तुलना करने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। कुछ लोग इसे अन्योक्ति भी कह देते हैं।

९३—अन्योक्ति-२ (विश्वासघात)

चातक तुम तो तृप्त नहि, गुण गाते दिन रात।
उधर उपल वर्षार्थ रत, मेघ लगाये घात॥

चातक ! तुम तो इसकी चिकनी चुपड़ी बातों में आकर इसके गुणगान करने हुए तृप्त नहीं हो रहे—और यह विश्ववासघाती मेघ ओलों की मानों, पत्थरों की वर्षा करने के लिये घात लगाये तैयार बैठा है। यहां भी अप्रस्तुत प्रशंसालंकार ही चमत्कार कर रहा है।

६४—सूक्ति १

नीति शून्य सेना रहित, एकाकी फिर वन्य।
बलके, बल केवल बना, वनपति मृगपति धन्य ॥

हे मृगपते तुम धन्य हो जो नीतिशून्य, सेना के साधन से रहित, और फिर अकेले होते हुए भी केवल अपने बाहु बल के बल पर ही वनपति—जङ्गल के राजा बन गये हो। यहां काव्यलिङ्गालङ्कार अनुप्रास मात्र की सहायता लेकर अकेला भी कैसा शक्तिशाली हो गया है।

६५—सूक्ति-२

काँव काँव कर कोचता, कान काक जब हन्त।
राजहंस ले मूकता, या प्रस्थान तुरन्त ॥

हन्त ! हार्दिक दुःख है कि जब काँव काँव करके कौवा कान नोच रहा हो तब राज हंस को चाहिए कि या तो वह चुप बैठा रहे अथवा उठकर अन्यत्र चला जाये। यहां प्रस्तुत काक से अप्रस्तुत खल का रोना रोया जा रहा है अतः अप्रस्तुत प्रशंसालंकार का चमत्कार है।

नहीं निहित हित में हुआ, हितचिन्तक से दूर।
सहित अहित जन ही रहा, अहो भावना शूर॥

अहो भावनाशूर व्यक्ति भी कैसा होता है, जो हित में भी दूर और हितचिन्तक से भी दूर है, केवल अहितजन के ही पास रहता है।

६६—प्रभु महिमा-१

व्योम पट्ट जो दीखता, यह अनन्त अनवद्य।
तारक पंक्ति निबद्ध ये, विभु महिमा के गद्य॥

यह जो अनन्त–महान् अनवद्य–दोष रहित अर्थात् पवित्र व्योमपट्ट-श्यामपट्ट का प्रतिनिधि हुआ दीख रहा

है, इसके ऊपर तारों–नक्षत्रों की पंक्ति प्रभु महिमा के लिखित गद्य के रूप में शोभित हो रही है। उत्प्रेक्षालंकार।

६७–प्रभु महिमा-२

अर्धचन्द्र जिसमें लगे, सुन्दर अर्ध विराम।
वही पूर्ण हो शोभते, पूरक पूर्ण विराम॥

इस नक्षत्रगत महाप्रदेश की पक्तियों में अर्धचन्द्र, अर्ध विराम जैसा और पूर्ण चन्द्र पूर्ण विराम जैसा शोभा पा रहा है। यहां भी उत्प्रेक्षालंकार की चमत्कृति है।

६८–प्रभु महिमा-३

अहो चतुर्दिग्दीखते, चतुश्चरण के पद्य।
जिसमें यह ब्रह्माण्ड ही, प्रभु रूपक अनवद्य॥

अहो आश्चर्य है कि चतुर्दिक–चारों दिशायें ऐसी दीख रही हैं जिनमें यह तारे और चन्द्र आदि का चार चरण वाले पद्य रूपक को बनाकर वह्माण्ड के स्वरूप नि रूपक विषय के

प्रतिपादक हो रहे हैं जिसमें प्रभु का स्वरूप अनुरूप ही साक्षात् हो गया। उत्प्रेक्षा की विचित्रता।

९९—प्राकृतिक-संगीत

स्रोत सरित खगकुल कलित, गाने सुन्दर गीत।
ललित काकली स्वरमिलित, साध रहे संगीत॥

बस इस दृश्य का संगीत भी देखिये—स्रोत–झरने, सरित--नदियां खगकुल–पक्षियों का झुण्ड सभी मिलकर कलकल और कलरव में ललित काकली स्वर को मिलित–सम्मिलित होकर ललित सङ्गीत के रूप में साध रहे हैं। उत्प्रेक्षालंकार का ललित सन्निवेश द्रष्टव्य है।

१००—कामना

नारायण मुनि का रहे आलोकित यह रूप।
सर्व हृदय में सर्वदा, मोद हेतु अनुरूप॥

नारायण मुनि (पूर्वनाम लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी) का जो यह आलोकित रूप देखने को मिल रहा है यह सहृदयों के लिये सर्वदा प्रसन्नता का अनुरूप–मनचाहा हेतु–निमित्त बना रहे।

इति मुक्तक शतक। मुक्तक-शतक

कतिपय प्रकीर्ण रचनायें

नारायणमुनिश्चतुर्वेद की कुछ प्रकीर्ण
रचनायें जो नवीन भी हैं और
बहुत समय पूर्व की भी हैं
तथा सामयिक गान
के योग्य भी हैं।

—माधव प्रसाद शास्त्री उपाध्याय

१

ऋग्वेद नासदीय सूक्त

ओ३म् नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद् रजो नो व्योमा परोयत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्

गहनं गभीरम्—के मन्त्र का रहस्य

शून्य सूनू बिन्दुरिन्दुद्वय बने
पर मिला अब तक न उनका उपकरण ॥१॥

सिन्धु बाहों की लहरियों में उठा
है पकड़ता भर अचम्भे में चरण ॥२॥

शून्य ही से सिन्धु और वसुन्धरा
वन गये कैसे न पाता उद्धरण ॥३॥

शून्य ही परमाणुओं का प्राण है
सर्ग और निसर्ग दोनों का शरण ॥४॥

शून्य ही ब्रह्माण्ड बनकर है खड़ा
सूर्य किरणें कर रही जिसका वरण ॥५॥

लोक औ–परलोक सारे शून्य में
कर रहे कैसे परस्पर का भरण ॥६॥

शून्य से जुड़ कर जगत यह एक भी
घूमता क्यों दश गुणित प्रत्येक क्षण ॥७॥

नव ग्रहों को मात्र नव संख्या गणित
शून्य से मिल कर न जिनका उत्तरण ॥८॥

बढ़ रहा है कौन होकर के प्रबल
कर रहा वाणी तुम्हारा अपहरण ॥९॥

२

अथर्ववेद कां० १६ सू० ६०

ओ३म् उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।

हे उत्तम मर्यादाओं के अभिरक्षक उठो इन आदर्श चरित्रवान् वन्दनीय देवताओं को अपनी कर्तव्य-शीलता से उद्बुद्ध करो।

उठो आत्म गौरव ! क्यों सोये यह साम्राज्य तुह्मारा।
अपनी अमित महा महिमा का वैभव कहां बिसारा॥

पुण्यमयी मर्यादा के जब तुम्हीं एक हो स्वामी।
कैसे फिर विपरीत बहेगी स्निग्ध हृदय की धारा॥

मतवाली हो दुष्ट भ्रष्टता आज नाचने दौड़ी।
हो उद्धत अन्याय दैत्य ने उसका वस्त्र उरतारा॥

क्षुद्र धूर्तता तस्करता को अपना सखी बनाती।
हुआ नीच उत्कोच अग्रसर नहि सङ्कोच विचारा॥

सर्व दुर्गुणों के दुर्गों को तुम्हे तोड़ना होगा ।
भव्य भावना का उद्भावन हो उद्देश्य तुम्हारा ॥
तुम्ही एक सर्वस्व विश्व में हो कर्तव्य सुधा के ।
तुम से ही ब्रह्माण्ड पा रहा यह उद्बोधन सारा ॥

दिनांक ६-६-१९७०

३

बृहदारण्यकोपनिषत्

ओ३म् असतो मा सद्गमय

मुझे हे नाथ अपना कर सदा सन्मार्ग दिखलायें ।
असत्पथ का पथिक हूँ नाथ ! स्व सरणि आप सिखलायें ।।
हुआ विभ्रान्त भवभीतिः प्रभावित कर रही मुझ को ।
अभय की भावना भूरि प्रभो अब आप ही लायें ।।
मुझे हे नाथ अपनाकर सदा सन्मार्ग दिखलायें

ओ३म् तमसो मा ज्योतिर्गमय

हुआ तम तोम तति से व्याप्त मानस देश है सारा ।
चली झञ्झा बुझा साहस समझ भी बोझ सी भाये ।।
मुझे हे नाथ अपनाकर सदा सन्मार्ग दिखलाये...

तुम्हारे दिव्य दर्शन की तृषा नहि सह्य अब किञ्चित् ।
निरञ्जन ज्योति के सर्वस्व! जगमग ज्योति जग जाये ।।
मुझे हे नाथ अपनाकर सदा सन्मार्ग दिखलायें...

ओ३म् मृत्यो र्मा अमृतं गमय

महाहिंसक महादस्यु छिपे ये काम क्रोधादि ।
खड़े हैं लूटने जीवन हमारी मौत बन आये ।
मुझे हे नाथ अपनाकर सदा सन्मार्ग दिखलायें...

विषय की वासना बन राक्षसी दौड़ी निगलने को ।
अमर पद के अमर स्वामिन् अमरता आप से पायें ।।
मुझे हे नाथ अपनाकर सदा सन्मार्ग दिखलायें...

१६६६

४

यजुर्वेद अ० २२ मं० २३

ओ३म् वसन्तेन ऋतुनादेवा वसव स्त्रिवृताः स्तुताः रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयोदधुः ।

हे दीर्घदर्शी ज्ञान सम्पन्न ज्ञानी जनो ! आवो हम तेजो रूपरथ से दौड़ कर इस बसन्त ऋतु के नव जीवन को इस सूर्य मण्डल से प्राप्त कर के दीर्घायु हों ।

नव चेतनता नव मानव का नव निर्माण कराने ।
नव भावों में नव वसन्त को नव्य रूप में लाने ॥
नव स्वतन्त्रता के नव उर में लगी चिपट मुस्काने ।
इसी भाव से कलित कोकिला उठी ललित गुण गाने ॥
मधुर राग से हुआ मधुर मधु लगी चेतना आने ।
नव चेतनता नव मानव का नव निर्माण कराने ॥

नव पल्लव नव जीवन लेकर नव सौन्दर्य दिखाने ।
निक से जग को नव मानवता का नव पाठ सिखाने ॥

नव सौरभ से भरे हुए नव सुमन लगे विकसाने ।
मधुर राग से गूंज गूंज तब लगे भ्रमर यह गाने ॥

नव सुरभित नव चरितवान् हो उठिये विश्व जगाने ।
नव चेतनता नव मानव का नव निर्माण कराने ॥

नव जीवन उज्वलित उठे पद दलित प्रेम दर्शाने ।
ऊँच नीच सारे नव पादप नवता में हर्षाने ॥

लगे लोक के भेदभाव हों ज्यों आमूल मिटाने ।
नव समीर नव भाव देख नव परिमल चला चढ़ाने ॥

नव पराग नवराग रंग को उसमें लगा उड़ाने ।
नव चेतनता नव मानव का नव निर्माण कराने ॥

शिशिर वृटिश का राज्य उठा अब,शुभ स्वराज्य अपनाने ।
नव उत्सव से नव जागती में नव गौरवता लाने ॥

कर वसन्त तू अन्त आज सब दुश्शासन मन माने।
तेरी नवता में नव मानव जग को बढ़े नवाने॥

नव जीवन का एक दान ही सर्वश्रेष्ठ सब जाने।
नव चेतनता नव मानव का नव निर्माण कराने॥

वसन्त पञ्चमी १६४७

५

ध्वजारोहण

पन्द्रह अगस्त के गौरव का मैं ध्वज फहराने आया हूँ।
मूर्त पताका बलिदानों की ले लहराने आया हूँ ॥
यह शुभ्र पट्टिका उस यशकी जिसको गांधी से जन्म मिला।
यह विश्वशान्ति की गङ्गा सी मै इसे बहाने लाया हूँ ॥
यह रक्त पट्टिका वीरों की जो विश्व सुरक्षा के व्यसनी।
यह दुष्ट दलन की धारा सी मैं इसे बढ़ाने लाया हूँ ॥
यह हरित पट्टिका दीख रही जो नेहरू के सपने इसमें।
हो सुख समृद्धि की विश्ववाटिका मैं इसे खिलाने आया हूँ॥

दिनांक १५ अगस्त सन् ४७

६

आर्यों का जागरण

प्रभात फेरी के समय के लिये

निशा कहां अब भोर हुई है आर्यवीर आवो आवो।
दे सन्देश वेद वाणी का गीत एकता का गाओ॥

देखो शुभ स्वराज्य का भानु है प्राची में उदय हुआ।
कार्य सरोवर में अब अपने स्वान्त सरोरुह विकसाओ॥

गायक भ्रमरों से गुञ्जारित विश्ववाटिका में यश हो।
विस्तारित हो चरित सुगन्धी विश्व हृदय को हर्षाओ॥

वैदिक संस्कृति की सरिता में जग को स्नान कराना है।
सत्य विचारों के चन्दन का सब को तिलक लगाओ॥

दिनांक ७-१-१९५०

७

स्वदेश महिमा

हमारा भव्य भारत वर्ष कैसा पुण्य वाला है।
जहाँ आदर्श जीवन ज्योति जीवित जन्म माला है॥

वही जाती जगत को तृप्त करती जाह्नवी जिसमें।
महाशीः स्वर्ग सौख्यों कासुराशिः रत्न माला है॥

यहाँ पर सर्व विद्यारूप आकर वेद शोभित हैं।
अखिल ब्रह्माण्ड की शोभास्थली से भी निराला है॥

हुआ सर्गादि में दीपित यहीं से ज्ञान का दीपक।
यही तो विश्व में अध्यात्म विद्या द्रव्य वाला है॥

हिमालय उच्च मस्तक पर बना चामर सरीखा है।
धुलाता पैर सागर भूतियों में भूति वाला है॥

यहाँ पर आ बसी आकर वसन्तादिक सभी ऋतुएं।
हुआ क्रीड़ास्थली देवी प्रकृति का प्रेम वाला है॥

दया आनन्द से पूरे जहाँ जगमग जवाहर थे ।
यही स्वाधीन भारत देश ऐसा भाग्य वाला है ॥

नहीं होती हमें तृप्तिः कहाँ तक गीत गायें हम ।
छिना–वैदिक अहिंसा सत्य का सन्देश वाला है ॥

दिनांक १० फरवरी सन् १९४९

८

गौ माता

छात्रावस्था में

तू मा है हमारी।
ले घास तू सुधा समान दूध पिलाती।
खा कर खली हमें अमूल्य घी है खिलाती।
भूखी रहे दुखी रहे न सिर है हिलाती।
दे पाहुनों को सुख तू हमें यश है दिलाती।
इस पर भी सुधि भूल गये हाय तिहारी॥

तू मा है हमारी॥

देता है जन्म अन्न को गोवर भी तुम्हारा।
करता है रोग वंश नाश मूत्र तिहारा।

हो छिन्न कण्टकों से जब पैरों ने निहारा ।
तेरा विचित्र चर्म हुआ उन का सहारा ।
तिस पर भी क्रूर हमने छुरी छल के है मारी ॥
तू मा है हमारी ॥

भण्डार धान्य से भरे सन्तान से देती ।
दे वैभवों को निज न कभी नाम भी लेती ।
महलों ने वृद्धि पाई है पाकर तेरी रेती ।
तेरी ही प्रेरणा में खड़ी विश्व की खेती ।
यह देख कर भी मारी गई बुद्धि हमारी ॥
तू मा है हमारी ॥

तव रोम रोम में ही खड़ा स्वर्ग है सारा ।
वह बह रही है दूध में मन्दाकिनी धारा ।
तू ने ही काम धेनु बन यह लोक है धारा ।

तू ही अशेष ब्रह्म की है एक आधारा।
तब भी न तेरी आरती है हमने उतारी॥
तू मा है हमारी।

दिनांक १८-८-१९२८

६

स्वागत गान—प्रथम

शुभा वह स्वागत हो स्वीकार।
सुमन सुमन से मिला मिला कर प्रस्तुत है यह हार।
शुभा वह स्वा०...

अभिनन्द चन्दन की थाली हर्षाङ्कुर के सर है डाली।
हृदय राग की जिसमें लाली पादोदक तैय्यार॥
शुभा वह स्वा०...

श्रद्धाभावों से सजवा के प्रेमामृत का सम्पुट पाके।
महितमान का अर्घ्य बना के अर्पित है उपहार॥
शुभा वह स्वा०...

पुण्य दर्शनों का फल देने निष्फल कलुष हमारा लेने।
स्नेह वृत्ति की नौका खेने आये हो इस द्वार॥
शुभा वह स्वा०...

गुण गौरव का शिखर तिहारा चढ़ना उस पर ध्येय हमारा।
पथ दर्शन दे करो सहारा चढ़ जायें उस पार ॥
शुभा वह स्वा०...

कार्य मार्ग की दिशा तिहारी पुष्पित फलित मनोहर प्यारी।
शुद्ध कामना यही हमारी शोभित रहे अपार ॥
शुभा वह स्वा०...

दिनांक २१-१-४७

१०

स्वागतगान–द्वितीय

हें पात्र हमारे स्वागत के हम भाव सुमन ये लाये हैं।
एक माला बना के इन की हम पहनाने तुम्हें ये लाये हैं ॥
हे पात्र—

ये खिले हुए हैं, सुन्दर हैं है गन्ध बड़ी इनकी भीनी ।
बस सभी मिले तुम को इन की यह चीज चढ़ाने आये हैं ॥
हे पात्र...

गरमी सरदी वर्षा आती या आँधी अन्धड़ आते हैं।
ये कभी नहीं कुम्हलाते हैं अद्भुत् कमाल क्या पाये है ॥
हे पात्र—

अभ्यागत मानव हे उदार ! संघर्ष देख मत घबराओ ।
सन्देश मूक अपना अपनी भाषा में भर कर लाये हैं ॥
हे पात्र...

मकरन्द भरा इनमें ऐसा जिसका बनता मधु है मीठा ।
जीवन ऐसा मधुमय बीते यह भेंट मधुरतम लाये हैं ॥
हे पात्र...

तुम हो खिलते इस माला से हम खिले तुम्हारे दर्शन से ।
स्वागत की अद्भुत् शोभा को ये सुमन तुम्हारे लाये है ॥
हे पात्र...

दिनांक ५-५-१६४६

११

प्रयाण गीत

तिरङ्गे ध्वज के साथ

भारतीय भव्य सभ्यता के हो महाप्रतीक।
भारतीय सभ्यता का प्रण तू निभाये जा॥

भारतीय संस्कृति सुरक्षा के देवदूत।
भारतीय संस्कृति का गौरव बढ़ाये जा॥

भारतीय पुण्य पूर्वजों के हे यशोऽभिमान।
भारतीय महिमा के मन्त्र तू सुनाये जा॥

भारतीय कीर्तनीय वीरता के रुद्ररूप।
वीर गर्जना से विश्व मञ्च को हिलाये जा।

दिनांक १५-८-५४

१२
बिदाई गीत

छात्र और छात्राओं के परीक्षार्थ

लो पाथेय हमारा ।

पुण्य प्रेम से ओत प्रोत यह सर्व लोक का प्यारा ।
स्निग्ध हृदय का राग मिलाया शुभ भावों से इसे सजाया ॥
अमित हर्ष के भाजन में भर यह देते (देती) हम सारा ॥
लो पाथेय ..

दूर परीक्षा में तुम जाते (जाती) पास परीक्षा में पर आते (आती)
देख देख यह अद्‌भुत् घटना हम सब का मन हारा ।
लो पाथेय...

नहीं बिदाई का यह गाना चाहता कभी तुम्हारा जाना ।
पर उन्नति का पथिक देख कर देता हमें सहारा ॥
लो पाथेय हमारा...

आगे आगे बढ़ते(ती)जाओ और पाठ यह पढ़ते(ती)जाओ।
नहीं प्रेम पाथेय छोड़ना पक्का ध्येय हमारा॥
लो पाथेय हमारा...

तुम्हें देख कर जाने जाते रूद्ध कण्ठ से गाते गाते।
छलक छलक कर आंसू अपनी बहा रहे हैं धारा॥
लो पाथेय हमारा...

दिनांक १६-१-५१

१३

आकांक्षा

जातकर्म और नामकरण के समय नव जात शिशु के प्रति

जीवन ज्योति जगाने आया जातक! जन्म तुम्हारा।
जय जय कार हुई घर भर में गौरव बढ़ा हमारा॥
जीवन ज्योति...

जग जग साज सजे हैं सारे जागा मङ्गल गान।
विजय कलश हो कर में शुभ कर शुभ जीवन हो सारा॥
जीवन ज्योति...

जन्म जन्म की सभी विभूति अर्पित रहे तुम्हारे।
पाद पद्म यह सद्म कर रहा पावन आज तिहारा॥
जीवन ज्योति...

बढ़ो विश्व के प्राङ्गण का है कार्य क्षेत्र यह शोभित।
सकल विश्व को आर्य बनाना है उद्देश्य हमारा॥
जीवन ज्योति...

दीर्घायुष्य यशस्वी सुन्दर स्वस्थ देह ले शिशुवर।
यह परिवार विश्व विश्रुत अब कर दो अपना प्यारा॥
जीवन ज्योति...

दिनांक ७-७-५४

१४

किसान

धनिकों के बँगलों का विलास निधि।

वह किसान यह रे...

श्रम स्वेद सलिल का पूर लिये,
निज अस्थि चूर्ण कर्पूर किये।
सेठों के मानस का विनोद विधि॥

वह किसान यह रे...

कर देह शिरा केसर स्वरूप,
दे चन्दन अपना रक्त रूप।
धनपतियों का शृङ्गार दान अति॥

वह किसान यह रे...

देकर शरीर की अगर बत्ति,
फिर जला जला कर रत्ति रत्ति।
श्रीमन्त जनों की गृह सुगन्धि सुधि॥

वह किसान यह रे...

जो पर हित कारक कृपा पुञ्ज,
जो गुण गौरव का नव निकुञ्ज।
लक्षाधीशों का शान्ति सदन सो॥

वह किसान यह रे—

दिनांक १७-२-४८

१५

जो बोले सो अभय
वैदिक धर्म की जय

जिससे पड़ी है नीव पुण्य प्रेम भाव की।
वेदोक्त वर्ण आश्रमादि सस्कार की॥
जो तालिका अनार्य वर्ग शुद्धि द्वार की।
जो अर्गला बना महान् हिन्दु ह्रास की॥

जिससे कुपन्थियों के हृदय में घुसा है भय।
जो बोले सो अभय वैदिक धर्म की जय॥

जिससे कुरीति कुप्रथा के जाल जल गये।
सब ऊंच नीचता के भेद भाव ढल गये॥
सारे कलह विरोध के प्रभाव गल गये।
उद्दाम वाम-दानवों के दर्प दल गये॥

वो सार्व भौम धर्म धाम का हुआ उदय ।
जो बोले सो अभय वैदिक धर्म की जय ।।

जिस से स्वराज्य को पुनीत प्रेरणा मिली ।
दूषित विदेश भावना स्वमूल से हिली ।।
पाकर प्रमाण तर्क-युक्त युक्तियाँ भलीं ।
मिथ्या मतान्तरीय नहि युक्तियाँ फलीं ।।

जो है स्व आर्य संस्कृति स्व सभ्यता निलय ।
जो बोले सो अभय वैदिक धर्म की जय ।।

जो आर्य सभ्यताभिमान रक्षणार्थ है ।
जो शुद्ध शुभ विचार चित्र चित्रणार्थ है।
जिसका महत्व पूर्व पूर्वजों के अर्थ है ।
जो विश्व शान्ति के प्रदान में समर्थ है ।।

जिसका हुआ संसार की सेवार्थ अभ्युदय ।
जो बोले सो अभय वैदिक धर्म की जय ।।

दिनांक २५-१२-१६३८

१६

मैं नहीं खेलूँगा

थक गया नाथ अब हरो व्यथा मैं व्यथित हृदय ले आया हूँ।
हे कष्ट मिटाने वाले मैं यह कष्ट सुनाने आया हूँ॥
थक गया...

तुम सधे खिलाड़ी माया के मैं कहां खिलाड़ी बन पाया।
तुम सदा जीतते आये हो मैं सदा हारता आया हूँ।
थक गया...

यह खेल खिलाओगे कब तक मैं जटिल खेल से ऊब उठा।
अब नहीं सिखाओ खेल मुझे मैं गया खेल से खाया हूँ।
थक गया

यह प्राङ्गण जग का है अगम्य मैं दौड़ दौड़ गिर जाता हूँ।
इन आघातों प्रतिघातों से घिर घायल होकर आया हूँ।
थक गया...

भव-सागर पार पहुँचने की क्रीडा में जीवन की नौका।
इन मृत्यु चक्र के भँवरों में मैं डुबा डुबा कर आया हूँ॥
थक गया—

हे खेल खिलाने वाले मैं यह खेल कहां तक खेलूंगा।
अब मुक्ति द्वार दो खोल खेल से पिण्ड छुड़ाने आया हूँ॥
थक गया...

दिनांक १०–११–१६८०

१७

तुम्हीं को पा रहा हूँ

माया की कसी गाँठ से कराह रहा हूँ मैं।
तेरी स्मृति में फिर भी हँसता आ रहा हूँ मैं॥ माया०

जीवन के पतझड़ में कभी आयेगा वसन्त।
इस भावना का हर्ष लिये आ रहा हूँ मैं॥ माया०

किं कर्तव्य मूढ़ता का छाया है अँधेरा।
फिर भी तुम्हें ही ढूंढता यह आ रहा हूँ मैं॥ माया०

तुम छिप गये हो जा के कहीं दीखते नहीं।
सर्वत्र फिर भी तुम ही को पा रहा हूँ मैं॥ माया०

दिनांक १३-१२-८०

१८

मुझे कैसा छात्र चाहिये

प्राचीन संस्कृतिः के लिये पात्र चाहिये ।
जो प्रण करे कि मैं हूँ ऐसा छात्र चाहिये ।। प्राचीन०

आदर्श गुरुकुलीय का दृष्टान्त एक हो ।
जीवन में भारतीयता एक मात्र चाहिये ।। प्राचीन०

वेदों का ले प्रदीप करे विश्व में प्रकाश ।
सच्चरित्र चित्र रूप गात्र चाहिये ।। प्राचीन०

बहती हो त्याग वृत्ति की सरिता जहाँ सदा ।
सद् भाव तीर्थ–यात्रा सौभ्रात्र चाहिये ।। प्राचीन०

दिनांक-१४-१२-८०

१६

जब तुम हो जग में जाग रहे

हे मुक्तिधाम आनन्द रूप जब तुम हो जग में जाग रहे ।
फिर हम कैसे भय से भगवन् अभिभूत हुए हैं भाग रहे ॥
जब तुम हो नाथ! सनाथ किये फिर आकुल और अनाथ हुए ।
हम जगन्नाथ ! जब साथ हुए फिर हाथ झटक क्यों भाग रहे ॥
हे मुक्तिधाम...

हम मैले और कुचैले हैं तुम शुद्ध बुद्ध हो मान लिया ।
इस काजर की काठी में आकर कौन यहां बेदाग रहे ॥
हे मुक्तिधाम...

बह रही वासना की सरिता उड़ रहा अँधेरे का अँधड़ ।
हो रहा स्खलन जीवन भू का यम के डसने आ नाग रहे ॥
हे मुक्तिधाम...

ये काम क्रोध मद लोभ मोह के क्रूर लुटेरे लूट लूट।
इन निकट विकट कटु कूट संकटों के हथगोले दाग रहे ॥
हे मुक्तिधाम...

अब तुम ही एक सहारे हो यह जीवन रक्षण हारे हो।
हम आशा यही प्रबल लेकर निर्बल भी पल पल जाग रहे ॥
हे मुक्तिधाम...

दिनांक १२--१२-८०

२०

दीपावली

कलि की कला की काली काली करतूत लिये,
चन्द्रकला कीरति भी आजकल काली है।
साल की रसाल की तमाल हिन्ताल और—
ताल की तलैया की तो आज पिटी ताली है ॥

काल में सुकाल में विशाल नभो भाग भूत,
भाण्ड में ब्रह्माण्ड में भी नहीं कहीं लाली है।
दीप दीप दीपन में दीपित स्वदेह देख—
द्वीप द्वीप दीपनार्थ दर्पित दीवाली है ॥

दिनांक २७-१०-८१

२१

होली पर्व

अङ्ग अङ्ग में उमङ्ग–योग की तरङ्ग लिये–
सुखद प्रसङ्ग सङ्ग राग रङ्ग होली है ।
भावना–सुसिद्ध ध्रुवाराधना विवृद्ध रस–
कामना – समृद्ध – हृद्य – पुष्प – गन्ध घोली है ।

प्रेमवारि धारी रुचिकारी पिचकारी हाथ–
साथ मनोहारी आर्य युवकों की टोली है ।
राष्ट्र हित धर्म हित महित महान् यज्ञ–
सुविहित – सर्वहित – साधना की होली है ।

दिनांक २८-१०-८१

२२

श्रावणी पर्व

हरित हरित शश्य श्यामला भला कहाँ न
छाया वृत छाया मृत स्वच्छ छवि छाई है
उमड़ घुमड़ मेघ – घटा पै घटायें घिरीं
आंख – मूँन्द स्वाति – वूँन्द चातक ने चाही है।

भूमितल नभतल जलतल एक हुए
समतल भावना सी कामना समाई है ।
शोभा की विभूति लिये सुखद शृङ्गार किये
लुभावनि सुहावनि ये सावनि आई है ।

दिनांक २८-१०-८१

२३

विजया दशमी पर्व

वैदिक विधान का प्रधान संविधान यह–
इसी में समाता आया राष्ट्रहित सर्व है ।
दुष्ट पक्ष कक्ष लक्ष क्षिप्त क्षुद्र क्षत्रियों के–
तक्षक का राक्षसीय रूप लिये गर्व है ।
सम्मुख प्रमुख खर मुखर भटों की यह–
घोर घटा टोप पूर्ण – साधना अखर्व है ।
न्याय और अन्याय का महान् अभियान जान–
साभिमान दण्ड धारी आया यह पर्व है ॥

दिनांक ३०-१०-८१

२४

वेदज्ञान की महत्ता

हर्षणीय मर्शनीय दर्शनीय दर्शनों का
बोधनीय आत्मतत्व व्रतति वितान है ॥

शिक्षितव्य रक्षितव्य पक्षदक्ष साधकों का
शिक्षक प्रशंसनार्थ मूर्तिमान् ज्ञान है ॥

प्राण सुप्रवीणों का है बाण रण धुरीणों का
त्राण क्षीण देहों का है मानस महान् है ॥

बेद ज्ञान आत्म ज्ञान भौतिक विज्ञान भानु
आर्य सभ्यता विधान ध्याव सन्निधान है ॥

अभ्यर्थना

ओ३म् त्वं नः पिता वसो !
त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधानः सुम्नमीमहे ।। ऋग्वेद ।।

सीमित समस्त विश्व को असीमित अपने स्वरूप में निवास देने वाले पितृदेव !

तुम हमारे पिता हो। आः हमारे लिये असीम भी महान् गोलाकार वह्माण्ड अपने से तिगुने तुम्हारे आश्रय सदन में पड़ा हुआ ऐसा दीखता होगा जैसे किसी महा प्रसाद के कोने में पड़ी हुई छोटी सी गेंद हो।

हे भगवन् उस तुलना में पता नहीं मेरी गिनती कहाँ होगी।

कोटानुकोटि भूमि उस पर असंख्य प्राणी।
जगदीश अपना नम्बर मैं कौन सा गिनाऊँ ।।

और हे असंख्यात कर्मों के करने वाले ! तुम ही हमारी माता भी हो—ऐसे द्विबद्ध परिचय से तुम्हारे सम्मुख तुम्हारी महिमा गाकर मुझे अपरिमित प्रमोद प्राप्त हो रहा है।

हे पवित्र देव ! मुझे भी अपनी पूर्ण पवित्रता का पूर्ण पात्र बनकार अपना कर अपना अमृत पुत्र बनाओ।

स्वामी नारायण मुनि प्रकाशन माला के लिये
सधन्यवाद दान देने वाले सज्जनों के नाम—

५०१) रु० दानवीर राय साहब चौधरी प्रताप सिंह जी
५७ एल माडन टाउन, करनाल पिन–१३२००१
आपने वैदिक पुस्तक मुद्रणार्थ प्रदान किये

५१) रु० श्री महेन्द्र प्रताप जी एडवोकेट, रुड़की

१००) रु० श्री सावित्री देवी जी, अध्यक्षा
आर्य कन्या इण्टर कॉलेज रुड़की

५१) रु० श्री सत्यप्रकाश जी इञ्जीनियर हरिद्वार के
सुपुत्र मनुज कुमार से प्राप्त।

और भी जो सज्जन इस आदर्श रूप प्रकाशन यज्ञ में अपनी·अपनी आहुतियाँ अर्थ सहायतार्थ समर्पित करेंगे सहर्ष सधन्यवाद कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया जायेगा।

आप सब की शुभ इच्छाओं की पूर्ति का
आकांक्षी
नारायणमुनिश्चतुर्वेदः
दिनांक २७-१०-८१
दीपावली पर्व

सूचना

स्वामी नारायण मुनि प्रकाशन माला का प्रथम वचार बिन्दु "सांस्कृतिक विचार" मुद्रित हो चुका है।

द्वितीय विचार बिन्दु—"मुक्तक शतकम्"

तृतीय विचार बिन्दु—"स्तुति शतकम्"

चतुर्थ विचार बिन्दु—"प्रकाशवीर यशः प्रशस्ति"

और

पञ्चम विचार बिन्दु—"काश्मीर यात्रा का साहित्यिक वर्णन" तक तो छप कर आपको मिल ही जायेंगे।

षष्ठ विचार ऊिन्दु—"गायत्री दर्शनम्" और

सप्तम विचार विन्दु—"श्रुति सुधा" तथा

अष्टम विचार बिन्दु—"सर्व धर्म वैदिक धर्म" ३ पुस्तकें लिखी जा रही हैं यज्ञ प्रसाद नाम की पुस्तक भी लम्बे चौड़े साइज में १५७ पृष्ठ की छप चुकी है।

—नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

ओ३म् मृत्योर्मा अमृ

हे प्रभुदेव ! हमें श्रेष्ठ कर्म न क
आदर्श पूर्ण जीवन यापन के उद्देश्य भू
ले चलिये ।

मेरे प्यारे कृपालु पाठक !

एक ओर आज के युग की भीषण
ओर इस पुस्तिका की आदर्श पूर्ण अ
यदि निम्नलिखित मूल्य आप नगण
अपनी ओर से इस पुस्तिका के मूल्य
इस सेवक को वञ्चित न करें क्योंकि
से अगला आदर्श पूर्ण वैदिक साहित्य सेवा में प्रस्तुत । है

जो सज्जन इस वैदिक आदर्श पूर्ण साहित्य श्रद्धा
से पढ़ने वाले सत्पात्र सज्जनों में निःशुल्क वितरण करना
चाहें वे मूल्य देकर इसकी यथाभिलषित प्रतियाँ लेने का
अनुग्रह करें जिससे अन्य आदर्श पूर्ण वैदिक साहित्य के प्रकाशन में सहायता मिल सके ।

पुस्तक प्राप्ति का पता—

नारायणमुनिश्चतुर्वेदः

डा० आनन्द वर्धन चतुर्वेदी,

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा

नन्दकिशोर विनीत, वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर